रामाश्रम सत्संग डिजिटल प्रकाशन

संत-प्रसादी

(भाग-13)

अध्यक्ष, रामाश्रम सत्संग

डा. करतार सिंह जी

के प्रवचनों का संकलन

रामाश्रम सत्संग (रजि.)

9-रामाकृष्ण कॉलोनी, जी. टी. रोड,

गाजियाबाद-201009 (उ.प्र.)

प्रस्तावना

हम सब के लिए अत्यन्त सौभाग्य की बात है कि इस वर्ष लगातार दूसरी बार भंडारे के शुभ अवसर पर पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों का संकलन संत प्रसादी भाग 13 प्रकाशित हो रहा है !

मेरा ऐसा मानना है कि गुरुदेव के प्रवचनों की जो अमृत वर्षा हो रही है ए उससे प्रेरणा लेकर हम सब को अपने जीवन को वैसा बनाने का प्रयत्न करना चाहिए जैसा वे हमें बनाना चाहते थे ! एक बार फिर से हम ग्वालियर के श्री आदर्श किशोर सक्सेना जी के आभारी हैं जिनके योगदान के बिना यह प्रकाशन सम्भव नहीं हो पाता !

पूज्य गुरुदेव के चरणों में प्रार्थना है कि उनकी अमृत धारा के प्रवाह को जनहित में पहुँचाने का अवसर हमें बार.बार प्राप्त होता रहे !

उम्मीद है कि पाठकों को हमारा यह प्रयास पसंद आएगा !

- डा. शक्ति कुमार सक्सेना

विषय–सूची

1. सत्संग साधना से जीवन का उद्धार 4

2. महापुरुषों ने जो ईश्वरीय गुण अपनाये उनमें क्षमा , प्रेम और सेवा प्रमुख रहे 11

3. मनमानी करने कि वृत्ति को तिलांजलि दें, सेवा व्रत लेकर , गुरुदेव को सच्ची श्रद्धांजलि दें 15

4. आनंद का भण्डार हमारे अंतर में है - उसे पाने के लिए आवरण हटाने होंगे....20

5. आध्यात्मिक परहेज़ 26

6. मन की अशान्ति का मूल कारण है - अहंकार 28

7. आत्मा और परमात्मा के बीच की दीवार कैसे हटाएं 32

8. सत्संग की साधना का स्वरुप 36

9. परमात्मा है , उसकी अनुभूति बड़ी सरलता से हो सकती है 41

10. स्वभाव बदलो , सत वृत्ति अपनाओ 45

11. भगवान शिव जैसे शांत और शिवलिंग के समान स्थिर रहकर क्षमा आदि सद्‌गुण सीखें 50

12. सच्चे जिज्ञासु बनो 55

13. आत्म- स्थित होने पर ही अपना-पराया जाता है 59

सत्संग साधना से जीवन का उद्धार

साधना कराने वाला विचार विमुक्त होकर बैठे . वह यह समझे कि मैं कुछ भी नही हूँ . गुरुदेव की , ईश्वर की कृपा बरस रही है . आप भी विचारों से विमुक्त होकर कोशिश करते रहें कि आपका मन जितना भी हो सके कम से कम भागे . आप दृढ़ता के साथ बैठें . गुरु और शिष्य में जो द्वेत का भाव है वह जाता रहे . यह ख़्याल नहीं करना है कि हम दो हैं या एक . कबीर साहब कहते हैं कि "एक कहूं तो है नहीं , दूजा कहूं तो गार , जैसा है तैसा रहे कहै कबीर विचार ". यह द्वन्द है . मन ही तो कहेगा कि वह एक है . वह तो एक से अनेक हो जाता है . परमात्मा तो द्वेत से परे हैं इसलिए वह भी दो नहीं है . वह जैसा है वैसा ही रहता है , ऐसा कबीर दास जी कहते हैं . यह प्रश्न भी खतम हो जाता है कि प्रभु एक है या दो . यह सब भाव खतम हो जाते हैं .

यदि गुरु यह ख़्याल करके बैठता है कि मैं गुरु हूँ तो सूफ़ी लोग कहते हैं कि ऐसे गुरु की गरदन काट देना चाहिये . शिष्य यदि यह भावना लेकर बैठता है कि मैं हीन हूँ तो वह भी गलती करता है . हमें सब भावनाओं से मुक्त होकर बैठना है . हमारे यहां का साधन प्रेम का साधन है . हमें परमात्मा में अपने आप को लय कर देना है , इसमें द्वेत नहीं होता परन्तु थोड़े दिन के लिये एक दूसरे से प्रेम करते हैं , जिससे यह प्रेम बढ़ते- बढते हमारा स्वभाव बन जाता है .हम अपने में गुरु का , परमात्मा का रूप देखें , हमारे कानों में जो स्वर पड़े वह ऐसा मालुम हो कि ॐ कार की ध्वनि है . सबमें वही ध्वनि है . ॐ , ॐ की आवाज़ है . अनहद शब्द की झंकार है . भीतर ही नहीं बाहर भी . भीतर में , बाहर में सब ओर ईश्वर ही ईश्वर दिखाई दे . हमारी जिव्हा से जो शब्द निकले , मधुर शब्द निकलें , ईश्वर का प्रेम लिये हुए हों . हम जो भी व्यवहार करें वह दैवी गुणों को लेकर करें , अप्रयास हो , प्रयास न करना पड़े . यह सहज समाधि है . आंखें बंद हैं तब भी प्रेम है , बात- चीत कर रहे हैं , उसमें भी प्रेम है , व्यवहार कर रहे हैं उसमें भी प्रेम है . सारा संसार हममें समाया है और हम सारे संसार में समाये हैं . यह विश्व भावना हो जाती है . परमात्मा के साथ एकता होने पर सबके साथ एकता हो जाती है .

महात्मा बुद्ध को क्या कष्ट था ? उन्होंने १८ बार जन्म लिया . वह ज्ञानी थे . जिसको आत्मा परमात्मा का ज्ञान होता है , उसे बुद्ध कहते हैं . परन्तु उनके भीतर तो व्याकुलता थी . संसार के दुःखों को देखकर वह दुःखी होते हैं और सोचते हैं कि कोई ऐसी आसान पद्धति मिल जाये जिसको पाकर संसार मेरी तरह बुद्ध बन जाय , ज्ञानी बन जाय , यानी जन्म मरण के बन्धन से छूट जाय , मृत्यु अवस्था का जो कष्ट होता है, उससे छूट जाय . शारीरिक रोगों से बच जाय . आत्मिक कठिनाइयों से मुक्त हो जाय .वह प्रेम की राह बताते हैं . कभी हमने भी सोचा है कि हमारे पड़ोसी को आनन्द मिले , वह सुखी रहे . यह प्रेम की निशानी है . महात्मा बुद्ध के पास धन दौलत है , सब सुःख हैं . परन्तु दुःखी हैं , चैन नहीं है . उन्होंने कितना कष्ट उठाया , कितना तप किया , तब जाकर उन्होंने इस रास्ते को बताया . उनको एक पद्धति सूझी , पद्धति का मतलब है साधन , सरल साधन . उनके हृदय में यह इच्छा थी कि संसार को कोई एक सरल रास्ता बतला दें जिससे निर्वाण प्राप्त हो सके , मोक्ष प्राप्त हो . यह विश्व -प्रेम है . यह

हमारे जीवन का लक्ष्य है , हमारा आध्यात्मिक प्रेम है . प्रेम महान है , बहुत ऊँचा है . हमको इस बात से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये कि हम प्रातः सांय साधना में बैठ गये , कभी -कभी सत्संग में भी सम्मिलित हो गये . यह प्रेम साधना नहीं है . हमारे वंश के महापुरुषों की यह विशेषता है , सुन्दरता है , बरकत है कि जितना प्रेम इस सत्संग में पाया जाता है, वह प्रेम बाहर नहीं है . परन्तु हमें इस प्रेम ज्योति को सारे संसार में प्रकाशित करना होगा . यह केवल मेरा ही काम नहीं है . मैं यह नहीं कहता कि मैं यह नहीं कर सकता . पर यह काम आप सबका है . काम का मतलब यह नहीँ कि आपको किसी मंच पर जाकर प्रवचन देना होगा या प्रचार करना होगा . आपको अपने जीवन को प्रेम -मय बनाना होगा . आपके सम्पर्क में जो भी आए , उसके साथ आपका जो भी व्यवहार हो , प्रेम -मय हो , उसमें ईश्वर के प्रेम का विकास हो . घर में कुछ रूप है , दफ़्तर में , क्लब में , राजनीति में कुछ और रूप हैं , ऐसा व्यक्ति साधना का जो लक्ष्य है ' प्रेम ' उसका अधिकारी नहीं बन सकता . एक ही रूप होना चाहिये .

मैं राजनीति में जाने को मना नहीं करता . महात्मा गाँधी की तरह आत्मिक शान्ति प्राप्त कर उसकी सुगन्ध फैलाइए . कितनी वेदना , कितनी उत्तेजना मिली महात्मा गाँधी को पर उन्होंने अपने आदर्श को नहीं छोड़ा . हमें भी चाहिये कि हम परिवार में रहें , दफ़्तर में रहें या अन्य किसी स्थान पर जायें , हमारा व्यवहार प्रेम का हो . प्रेम की ज्योति प्रकाशित रहे . आप सबको अगरबत्ती की तरह बनना है . अगरबत्ती अपनी सुगंधि चारों और फैलाती है . इसी तरह आप-हम-सबको अपने प्रेम को चारों ओर फैलाना है . हमारा अन्तिम लक्ष्य प्रेम है , आत्मिक प्रेम . प्रेम ही परमात्मा है . " love is God and God is love. " हम प्रेम में स्थित रहें . संसार की आंधियाँ आयें , दुःख -सुःख आयें , परन्तु हमारे भीतर की स्थिति स्थिर रहे . आप प्रेम की सुगंधि में विपरीत स्थिति में भी स्थिर रहें . महात्मा बुद्ध ने इस स्थिति को दो भागों में बांटा है . कोई संस्कार न हो , कोई विचार न हो . यह प्रेम का , मोक्ष का स्वरूप है . यह प्रेम भक्ति के बिना प्राप्त नहीं हो सकता. प्रेम के लिए सन्तोष , सहनशीलता , सत्यता की आवश्यकता है . साधना के साथ -साथ महापुरुषों की वाणी , उनके जीवन चरित्र का भी अध्ययन करना चाहिये , उन पर विचार करना चाहिये . वास्तव में यदि गुरु के साथ सच्चा प्रेम है तो कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है . पूज्य लाला जी महाराज (आचार्य दिगन्त महात्मा रामचंद्र जी महाराज) ने पूज्य गुरुदेव (परमसंत महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) से गीता पढ़ने के लिए कहा . गीता लाई गई . एक दो दिन गीता का उपदेश दिया , फिर कहने लगे छोड़ो , भीतर की गीता पढ़ो . यह उन लोगों के लिये है जो अपना पूरा जीवन गुरु के लिए न्यौछावर कर देते हैं . उनके लिए तो यह बात सरल है . परन्तु सामान्य व्यक्ति के लिए बड़ा कठिन है . हमें गुणों को धारण करना है , महापुरुषों की वाणी को पढ़कर उस पर विचार करना है . ईश्वर का गुणगाण करना है . यही तो परमार्थ है . यह कहना कि गुरु करेगा , ऐसा नहीं . या तो हम अपने आप को गुरु पर पूर्णतः न्यौछावर कर दें , नहीं तो बीच का रास्ता अपनायें . भक्ति को भी अपनायें , इन नियमों का पालन करें और ज्ञान भी प्राप्त करें . एक महापुरुष से एक भक्त ने पूछा कौन सी साधना करनी चाहिये ? साधक की जैसी वृत्ति हो , जिस प्रकार के उसके संस्कार हों , व्यवसाय हो , उसके अनुसार वह आचार - व्यवहार को अपनाये , भक्ति जितनी हो सके करे , तब जाकर वह प्रेम के

आयाम में प्रवेश पा पायेगा . उससे पहले नहीं . यह प्रेम का रास्ता है . मीरा जी का प्रेम देखिए .उन्होने सब कुछ न्यौछावर कर दिया उस सांवले सलौने भगवान पर .जो मीरा जी जैसी या हनुमान जी जैसी या अन्य महापुरुषों जैसी साधना नहीं कर सकते वे साधारण साधन अपनायें - जैसे आचार - व्यवहार सुधारना , भक्ति करना और बुद्धि का सदुपयोग करना . चाहे आचार -व्यवहार हो , चाहे भक्ति , बुद्धि , ज्ञान की साधना हो , हमें अपने गुरु पर विश्वास करना चाहिये . जैसा वह कहें हमें वैसा करना चाहिये . वह आपको बतला देंगे कि आपको किस प्रकार का साहित्य पढ़ना चाहिये . यदि शेष सब ठीक है , केवल प्रेम उत्पन्न नहीं होता , जब सत्संग में बैठते हैं तो चक्षुओं में अश्रु प्रगट नहीं होते तो ऐसे भाइयों के लिए उचित होगा कि वे प्रेमी लोगों का संग करें . मीरा जी , सूरदास जी के भजन , उनका जीवन चारित्र पढ़ें . गुरु अंगद देव जी ने कोई साधना नहीं की केवल अपने इष्टदेव गुरु नानक देव जी की सेवा की , उनका आज्ञा पालन किया , अपने को गुरु के समर्पित किया . भगवान दक्षिण मूर्ति के पास जो भी जिज्ञासु आता था , वह मौन रहते थे , बोलते नहीं थे . जिज्ञासु को कहा जाता था कि वह भी मौंन होकर बैठ जाये . ईश्वर कृपा या गुरु कृपा जो मौंन में होतीं है वह प्रवचनों द्वारा नहीं होती . प्रवचनों से मार्गदर्शन तो मिलता है , कुछ रस भी मिलता है परन्तु वास्तविक अनुभूति , वास्तविक ज्ञान मौंन से ही मिलता है . बाहर का मौंन महत्वपूर्ण है परन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है अन्दर का मौंन . मौन के दरवाज़े से गुज़र कर ही हम आत्मा के दरवाज़े तक , परमात्मा के पास तक पहूंच सकते हैं . तो हमें प्रयास करना चाहिये कि सत्संग में बैठे हों , या सत्संग न हो रहा हो , हम मौन रहने का अभ्यास करें . आन्तरिक मौन रहने का अभ्यास करें , इससे एक असीम शक्ति उदय होती है . जो व्यक्ति हर वक़्त बोलता रहता है वह जो भी बोलेगा वह सही नहीं होगा . जो व्यक्ति कभी -कभी बोलता है और भीतर में शान्त रहता है वह जो भी बोलेगा वह सही बोलेगा . इसलिए आन्तरिक मौन का जितना भी अभ्यास हो सके करना चाहिये .

भीतर में आपका मन आपके इष्टदेव के चरणों मे लगा हुआ है . बस इतना ही करना है . आगे चलकर यह भी छूट जाता है . जाप भी छूट जाता है . केवल मौन रहता है . यदि ईश्वर की कृपा हो जाय तो आत्मा की अनुभूति हो जाती है . इस मौन के लिए प्रयास नहीं किया जाता . जहाँ प्रयास होगा, वहाँ मन होगा . जब हम पूर्ण रूप से अप्रयास हो जाते हैं , तब भगवान आते हैं . जब हम दीन होकर , बलहीन होकर , अपने आप को प्रभु के चरणों में समर्पण कर देते हैं , कुछ आशा या इच्छा नहीं रखते , तब ईश्वर की कृपा होती है . हो सकता है कि किसी पर ईश्वर-कृपा पहले हो जाय और किसी पर बाद में हो . परन्तु होती है अवश्य. उसकी कृपा , उसका फैज़ प्रतिक्षण हम पर बरस रहा है . मौन रहना बहुत कठिन है . ईश्वर के निराकार रूप की अनुभूति केवल मौन में ही हो सकती है . " जाप मुआ , अजपा मुआ अनहद हूं मर जाय ." कबीर साहब कहते हैं कि जो जाप है , भगवान का नाम है , जो अजपा है , अप्रयास हो रहा है . भीतर में जो अनहद के शब्द हैं वो भी ईश्वर के प्रेम में लय हो जाते हैं . आत्मा जो हमारे शरीर में है , वह परमात्मा में लय हो जाती है . फिर मनुष्य जन्म मरण के बन्धन से छूट जाता है . जो ऊँचे अभ्यासी हैं वे जो भी साधना करते हैं उसके साथ -साथ मौन की साधना का अभ्यास भी बढ़ाते जाते हैं . जितना भी मौन साध सके . भीतर का मौन . इसका मतलब यह नहीं है कि हमने तो मौन रखा है , वैसे तो हम नहीं

बोलते , क़लम दवात ली और कागज़ पर लिख दिया . मगर हमारे भीतर मे संकल्प- बिकल्प उठ रहे हैं . मौन का मतलब है निर्विचार , कोई संकल्प नहीं . कुछ भी नहीं , कोई बुरा विचार नहीं , कोई अच्छा विचार नहीं . यह कब होता है , जब साधक अपने आपको ईश्वर के चरणों में समर्पित कर देता है . self surrender यानी अपनी कोई इच्छा नहीं रखता , अपनी कोई आशा नहीं रखता . कोई भी घटना घटित होती है , यदि प्रतिकूल है तो भी वह प्रसन्न है . यदि अनुकूल है तो वह प्रसन्नता के भाव नहीं रखता . तो मौन का भाव है कि अपनी कोई इच्छा न रहे . यही मौन जाकर आत्मा में लय हो जाता है . जितना समय मिले , जितना आप रह सकते हैं , उतना मौन रहिए . इसका प्रयास करने से आपकी वाणी में शक्ति आयेगी . आप जो बोलेंगे गलत नहीं बोलेंगे . जब ज़रूरत हो बोलो और फिर अन्दर में लय हो जाओ . गुरुदेव के चरणों में मन लगा रहे . मन जो है वह प्रभु ने एक बड़ा विचित्र उपकरण दिया है . हमें इसको अपने अधीन करना हैं . हम इसके अधीन न हों .हम जब चाहें इसका उपयोग कर लें , जब चाहें इसे मौन कर लें . इसको ऐसा साधा जाय कि यह शान्त बैठा रहें . परन्तु हमारे भीतर में क्या होता है ? चारों ओर भाग दौड़ , अशान्ति . ऐसा व्यक्ति शान्ति कैसे पा सकता है ? तो हमें मौन की साधना करनी होगी . हमारी सम्यक बोली होनी चाहिये . ऐसी बोली निकालिये जिससे किसी को हानि न हो , दुःख न पहुँचे .हम प्रमादी न बन जायें , सुस्त न हो जायें . भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया कि वीर बनो . इस संसार रूपी कुरुक्षेत्र में वही व्यक्ति लड़ सकता है जो वीर है . हम वह भोजन करें जिससे हमारा शरीर स्वस्थ रहे . खाना पौष्टिक हो , जल्दी पचने वाला हो . उतना खाओ जिससे शरीर स्वस्थ रहे और ईश्वर का भजन भी हो सके . कम सोओ . नींद भी उतनी लीजिए जिससे आपके शरीर को आराम मिले . इतना मत सोओ कि आप प्रमादी बन जायें . संसार के प्रति आप अपने दायित्व भूल जायें . इतना भी न जागें कि आपके दिमाग़ में खुश्की हो जाये . जितना शरीर को आवश्यक है उतना हमें अवश्य सोना चाहिये . दृढ़ योग नहीं करना चाहिये . दृढ़ योग करने से बहुधा बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं . महर्षि रमन बहुत कम बोलते थे . जो भी जिज्ञासु उनके पास जाता था , वह भी चुप करके बैठ जाता था . अपने प्रश्न अपने मन में रख लेता था , क्योंकि संसार में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसके मन में दुविधा न हो . उनके पास बैठने से जो भी प्रश्न होते थे , उनके उत्तर स्वयं उनके बिना बोले मिल जाते थे . आप भी करके देख सकते हैं . चाहें आप सन्त के पास बैठें , चाहें परमात्मा की सेवा में बैठें , चुप करके बैठ जाइए . १०,१५,२० मिनिट मौन होकर बैठ जाइए . जो भी प्रश्न आपके हैं , उनके उत्तर आपको मिल जायेंगे .

गीता हमें सिखाती है कि हमारे भीतर में आसक्ति न हो . अनासक्त जीवन व्यतीत करने की कोशिश करें . महात्मा गान्धी ने गीता का जो अनुवाद किया है उस पुस्तक का नाम ही उन्होंने अनासक्त योग रखा है . गीता का सार ही यह है कि हम मोहग्रस्त न हों . यह बात कहने में तो सरल लगती है परन्तु हमारा जीवन इतना मोहग्रस्त हो गया है कि हम इससे मुक्त नहीं हो पा रहे हैं .

कबीर साहब कहते हैं कि "मेरा मुझमें कुछ नहीं , जो कुछ है सो तोर , तेरा तुझको सोंपते क्या लागत है मोर ".यही गीता का उपदेश है . मेरा कुछ भी नहीं . जिस शरीर के साथ मेरा सम्बन्ध है , वह शरीर भी तो मेरा नहीं . धन दौलत भी मेरी नहीं . विचार भी मेरे नहीं . हम यह जानते भी हैं कि हमारे

साथ कुछ भी नहीं जायेगा . तब भी हम यहीं समझते हैं कि संसार में जो कुछ भी है सभी हमारा है . अज्ञान के कारण हम मोहग्रस्त हो रहे हैं . इसीलिये भगवान अर्जुन से कहते हैं कि अज्ञान का त्याग करो, अभिमान का त्याग करो और मोह का भी त्याग करो .आत्मस्थित होकर अथवा परमात्मा में लय होकर , इस धर्मक्षेत्र में वीर बनकर , साहसी बन कर , इस संग्राम में जूझना चाहिये . यह जीवन एक संग्राम है . वही जूझ सकता है जो वीर है , जिसमें आसक्ति नहीं है . अर्जुन जैसे वीर मूर्छित हो जाते हैं . आपका और मेरा कहना ही क्या है ? छोटी सी तक़लीफ़ आ जाती है तो हम अपने आप को भूल जाते हैं , गीता के उपदेश को भूल जाते हैं . भगवान राम की मर्यादा और उनके उपदेश भूल जाते हैं .

भगवान अर्जुन से कहते हैं - हे वीर ! मेरे मित्र , और कुछ मत करो , कर्म और कर्मफल में आसक्ति का त्याग कर दो . मुझमें , मेरे चरणों में समर्पण कर दो . कर्म फल को भी मेरे ही चरणों में समर्पण कर दो . तुम तनिक भी आसक्ति न रखो . तुम क्यों चिन्ता करते हो , मैं तुम्हारी चिन्ता करूँगा . बच्चा है . माँ की गोद में जाता है अचिन्त होकर , निर्भय होकर . तुम बच्चे की तरह रहो . माँ के रहते हुए क्या बच्चा भय खाता है ? क्या उसको भविष्य का कोई भय या चिन्ता होती है ?. वह माँ की गोद में आनन्द से रहता है . तुम भी अपने आप को मेरे में लय कर दो . मेरे में लय क्या करोगे ? यह जो पाँच तत्व और तीन गुण मेरे में लीन कैसे होंगे ? लय केवल आत्मा हो सकती है परमात्मा में . भगवान समझा रहे हैं कि ये पंचतत्व और तीन गुण हैं ये नश्वर हैं , अस्थाई हैं . इनको छोड़ो . आसक्ति का त्याग करो , सत्यता की अनुभूति करो . आत्मा को परमात्मा में लय करके तुम सदा के लिए अमर हो जाओ , मोह रहित हो जाओ . जितने भी महापुरुष हुए हैं उन सब ने हमें अपने जीवन से शिक्षा दी है कि हम किस प्रकार अनासक्त जीवन व्यतीत करें . गुरु गोविंद सिंह जी , गुरु नानक देव जी , भगवान राम , स्वामी राम दास जी के जीवन के उदाहरण हमारे सामने हैं जिनका हमें अनुसरण करना चाहिये . आप सब से अनुरोध है कि महापुरुषों के जीवन का अध्ययन करें . उनका जीवन हमारे लिए शास्त्र हैं , उपदेश हैं . उनके जीवन का अनुसरण करें . गीता के उपदेश को , भगवान राम की मर्यादा को , सन्तों के जीवन को अपनायें . उनके जीवन का अनुसरण करने से हमारा जीवन भी दुःख रहित हो जायेगा . चाहें कितने भी कष्ट हमारे जीवन में आ जायें , हमारे भीतर की शान्ति विचलित नहीं होगी , हमारा मन विक्षिप्त नहीं होगा . हमारा मन विक्षिप्त तभी होता है , तभी दुःखी होता है जब हम अज्ञान में होते हैं . हमारे में अज्ञान तब तक है जब तक हमारे में आसक्ति है , सच्चा प्रेम नहीं है , सच्चा ज्ञान नहीं है . इसलिए आप सबसे अनुरोध है , करबद्ध प्रार्थना है , केवल बातों को सुना ही नहीं जाय , किताबों की पूजा ही न की जाय , किताबों में जो कुछ ज्ञान है , उस ज्ञान की गंगा में स्नान किया जाय . अपने भीतर में शान्ति रखें . कितनी भी दुःखद घटना आ जाय , कितना भी सुःख आ जाय , हमारी समता भंग न हो . जब तक समता नहीं बनेगी , मानसिक सन्तुलन नहीं बनेगा , तब तक हमें सच्ची शान्ति नहीं मिलेगी . भगवान ने अर्जुन को यहीं समझाया है . मोह को छोड़ें , आसक्ति का त्याग करें . "

मेरा मुझ में कुछ नहीं , जो कुछ है सो तोर, तेरा तुझको सोंपते क्या लागे है मोर ", मेरा कहने योग्य मेरे पास कुछ नहीं है .यह शरीर नष्ट हो जाता है . मुझे क्या दुःख ? तेरी चीज़ तुझे सौंप दीं है .

मुझसे क्या मतलब ? कोई मोह नहीं . इस शरीर के साथ जो सम्बन्ध है वो मेरे थोड़े ही हैं , सभी आपके हैं . तेरे चरणों में समर्पित है . मुझे दुःख काहे का . यदि मेरा होता तो मेरे साथ जाता . वह तो मरने पर साथ नहीं जाता . तो अज्ञान छोड़कर मोह का त्याग करें . मोह का त्याग करने से समता आ जायेगी . मानसिक सन्तुलन आ जायेगा . अनुकूल अथवा प्रतिकूल सभी परिस्थितिओं में हमारा चित्त आनन्दमय रहेगा . जब तक चित्त आनन्दमय नहीं रहता तब तक आत्मा की अनुभूति नहीं हो सकती . यह सत्यता है कि जब तक भीतर में प्रसन्नता नहीँ आती , आनन्द नहीं आयेगा , तब तक आत्मा की समीपता नहीं होगी . आनन्द , सुःख और सच्ची प्रसन्नता कब मिलेगी ? जब हम सन्तोष को अपनाएँगे . भगवान कृष्ण ने गीता में तीन प्रकार के तप कहे हैं . शरीर का तप , मन का तप , बुद्धि का तप .

स्वामी रामदास जी ने मन के तप के लिए तीन बातें अपनाना बताई हैं .

(१) तितिक्षा -- हम सुःख को भी हज़्म करें , दुःख को भी हज़्म करें . तितिक्षा के दो अर्थ होते हैं . एक तो गर्मी सर्दी को सहन करें . दुःख - सुःख आ जाय तो हमारा शरीर सहन कर ले . किन्तु वास्तविक तितिक्षा तो है "मस्ती " . यदि कोई हमें गाली दे तो हमें दुःख न हो और यदि कोई हमारी स्तुति करे तो हमें अहंकार न हो . महात्मा बुद्ध का जीवन इसका उदाहरण है . भगवान बुद्ध समता के स्वरूप थे . केवल उनकी तस्वीर देखने से ही हमें शान्ति मिलतीं है तो उनके भीतर में कितनी शान्ति होगी . यह तो संसार है , इसमें हमें सब ओर से उत्तेजना मिलेगी ही . बाहर के लोग कम , परिवार के लोग अधिक उत्तेजना देते हैं . तो तितिक्षा को , सहनशीलता को अपनाना चाहिये .

(२) उदासीनता -- कोई आशा मत रखिए , कोई इच्छा मत रखिए . इच्छा रखेंगे और यदि उस इच्छा की पूर्ति नहीं हुई या आशा के अनुकूल कोई बात नहीं हुई , तो हमारे मन को दुःख होगा . प्रत्येक व्यक्ति यहीं चाहता है कि संसार में जितने सुःख हैं सब मेरे पास आ जायें और जो मैं सोचता हूँ , सारा संसार उसके अनुकूल चले . यह सोचना मूर्खता है . उदासीनता अपनानी चाहिये . हमें शास्त्र के अनुकूल , गुरु के उपदेश के अनुकूल तथा अपने भीतर की चेतना के अनुकूल , अपना कर्तव्य करना चाहिये . क्या परिणाम होगा , इसकी चिन्ता मत कीजिये . आप अपने व्यवहार से , मधुर वाणी से संसार की सेवा करें . यह संसार स्थायी नहीं है . महात्मा बुद्ध ने इसे अनित्यता का बोध कहा है . परमात्मा के सिवाय कोई वस्तु नित्य नहीं है . यह शरीर , सम्बन्धी , धन , मकान , दुःख -सुःख कोई सदैव रहने वाले नहीं हैं . सब अनित्य हैं . जिसको इस अनित्यता का बोध हो जाता हैं, वह उदासीन हो जाता हैं . उदासीनता का मतलब है कि भीतर में यह समझ , ज्ञान आ जाना चाहिये कि यह संसार तो नित्य रहने वाला , स्थायी नहीं हैं तो इसके प्रति मोहग्रस्त क्यों होना चाहिये आसक्ति क्यों रखें ? संसार से मन हटाकर ईश्वर से अनुराग किया जाय . यदि संसार से उदासीनता की जायेगी और ईश्वर के साथ प्रेम नहीं किया जायेगा, तो मन में निराशा -दुःख उत्पन्न हो जायेगी , जिसे हर आदमी बरदाश्त नहीं कर सकेगा . इसलिए उदासीनता के साथ ईश्वर अनुराग होना चाहिये .

(३) नमस्कार -- किसको ? सारे जग को , सारे विश्व को . क्यों ? प्रत्येक रूप में ईश्वर व्यापक है . हम इन रुपों को नमस्कार नहीं करते वरन इन रूपों में जो आत्मा और परमात्मा व्यापक है , विद्यमान है ,

उसको नमस्कार करते हैं . जब आप श्रद्धा और विश्वास के साथ सब ही को नमस्कार करेंगे तो आपके हृदय में किसी के प्रति ग्लानि नहीं होगी चाहे कोई आपके प्रति कितनी ही बुराई क्यों न करे . भगवान राम के हृदय में रावण के प्रति द्वेष भावना नहीं है. उसके हृदय में भी वही आत्मा और परमात्मा है . जब आपका सबके साथ प्रेम होगा , आप सब में ईश्वर का रूप देखेंगे , सब कार्य ईश्वर के लिए ही करेंगे . सबको सुःख और आनन्द पहुँचाने के लिए कर्म करेंगे तो आपके चित्त में कितनी प्रसन्नता उत्पन्न होगी? .

यह मन का तप है जो गीता में भगवान कृष्ण ने समझाने की कोशिश की है . उसको तीन सरल शब्दों में स्वामी राम दास जी ने ऊपर समझाया है . हमें भी अपनी इस जीवन यात्रा में कुछ तप करना पड़ेगा . भगवान ने जो तप बताया है -- तितिक्षा , उदासीनता , नमस्कार , ईश्वर प्रेम , सबका सम्मान करना , सबकी इज़्ज़त करना , ऐसा करने से प्रत्येक व्यक्ति को वास्तविक सुःख , आत्मिक सुःख, आनन्द की अनुभूति हो सकती है . ईश्वर के साथ प्रेम करिए या ईश्वर के जो प्रेमी हैं उनकी सेवा करिए, एक ही बात है . जिस व्यक्ति के भीतर में ईश्वर के गुण व्यक्त हैं , उस व्यक्ति की सेवा करिए . केवल सेवा करने से ही हमारा उद्धार हो जायेगा . उस व्यक्ति के जीवन का अनुसरण कीजिये तथा वैसे ही बन जाइए . बड़ा सरल साधन है . ईश्वर कृपा से आपको यदि कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाय जिसका रोम -रोम ईश्वर प्रेम से रंगा हुआ है ,तो आप ऐसे व्यक्ति की सेवा करें . इससे हमारे जीवन का उद्धार हो जायेगा .

ईश्वर आप सबका कल्याण करें .

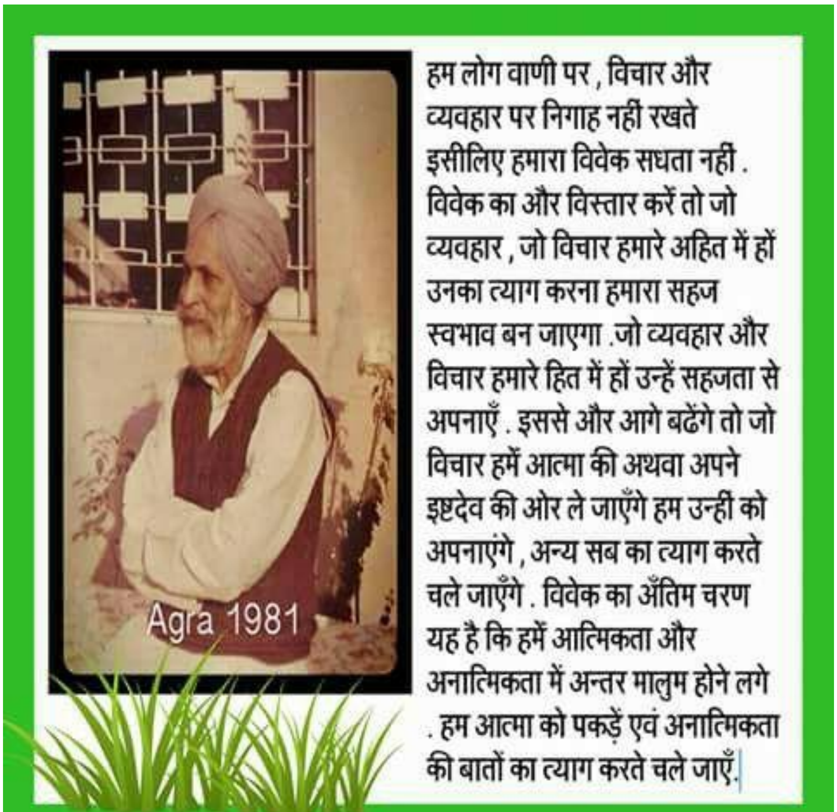

महापुरुषों ने जो ईश्वरीय गुण अपनाये उनमें क्षमा, प्रेम और सेवा प्रमुख हैं

मनुष्य सदा से ही मोह-माया में फंसा रहता है. उसको यह भास नहीं कि वह आत्मा है जो परमात्मा का अंश है. वह भूला-भटका हुआ सन्सार में मनमानी करता है . आप भी दुखी होता है ,औरों को भी दुखी करता है. परन्तु ईश्वर कृपा करके समय-समय पर भिन्न-भिन्न रूपों में सन्सार में आते हैं , अवतार लेते हैं तथा सोये हुए व्यक्तिओं को पुनः जाग्रत करने का प्रयास करते हैं.

सन्सार भर में हज़रत ईसा का जन्म-दिन प्रति वर्ष २५ दिसंबर को ईसाइयों द्वारा बड़े उल्लास के साथ मनाया जाता है. भगवान - चाहे वो ईसा के रूप में प्रगट हों , चाहे वो राम या कृष्णा के रूप में , चाहे वो अन्य महापुरुषों के रूप में प्रगट हों, हर स्वरुप में है तो वही. हमें किसी विशेष नाम से राग-द्धेष नहीं होना चाहिए. सभी महापुरुष हमारे हैं. परमात्मा हमारा है तो सभी महापुरुष भी हमारे हैं.

महात्मा गांधी को जो भजन प्रिय थे उनमें एक था _" वैष्णव जन तो तेने कहिये जे,पीर परायी जाने रे ..." यह भजन उनके आश्रम में रोज़ गाया जाता था. बड़ा सुन्दर भजन है. हम सबको प्रेरणा देता है. हम पढ़ लेते हैं परन्तु हम पर कोई असर नहीं होता. वैष्णव कौन है ? वैष्णव वही है जो दूसरे की पीड़ा पहचाने और उसके दुःख की निवृति करे. सभी महापुरुषों ने व्यक्तिओं के धर्म के अनुसार धर्म के गुण बताये हैं. परन्तु मनुष्य बहुत ही चतुर है, उसका धर्म मनमानी करना हो गया है. इस अधर्म को दूर करने के लिए ही हज़रत ईसा ने जन्म लिया . इनके बाल रूप की पूजा होती है. माँ की गोद में शिशु ईसा बैठे हैं , माँ मरियम का स्नेह ले रहे हैं. इस रूप की पूज़ा क्यों होती है ? क्योकि इसमें वात्सल्य , स्नेह और आत्मीयता है, सरलता और दीनता है. प्रभु को भी ये ही गुण प्रिय हैं.

हम ईश्वर के पास पहुँचने के लिए बड़ी बुद्धिमानी से कोशिश करते हैं किन्तु हम पहुँच नहीं पाते, हमारी चतुराई हमें ईश्वर के पास नहीं ले जायेगी. हम सबको शिशुवत बनना होगा. हज़रत ईसा अपनी सरलता से सबमें भगवान के दर्शन करते हैं. उनके लिए कोई शत्रु है ही नहीं कहते हैं " लव दाई नेबर एज़ दाइसेल्फ़ " अर्थात अपने पडोसी को - यहाँ तक कि अपने शत्रु को भी - इस प्रकार प्रेम करों जैसा आप अपने आप को करते हो या चाहते हो कि दूसरा आप से करे.

हज़रत ईसा मसीह को जब फांसी पर चढ़ाया गया तो लोग उनकी स्थिति को देखकर व्याकुल हो रहे थे, मूर्छित हो रहे थे और ज़ालिमों से बदला लेना चाहते थे. लोगों ने तलवारें निकाल लीं . हज़रत ईसा कहते हैं ' अपनी तलवारों को म्यान में रख लो. यदि आप मुझसे प्यार करते हो तो मेरा कहा मानो. मैं आपको आदेश नहीं दे रहा हूँ , मैं प्रेम के नाते आपसे निवेदन करता हूँ कि हिंसा या प्रतिशोध न करो. ." वह स्वयं प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि - " हे प्रभु इनको क्षमा करो. ये जो मेरे साथ ज़ुल्म या दुर्व्यवहार कर रहे हैं. इसमें इनका दोष नहीं है - ये नहीं जानते कि यह क्या और क्यों कर रहे हैं. " फांसी पर चढ़े हुए हैं , गले में रस्सी पड़ी हुई है , दो-चार क्षण के महमान हैं, तो भी प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि ' ओ लार्ड फॉरगिव देम , फॉरगिव देम .(हे प्रभु ! इनको क्षमा करदो, क्षमा कर दो .)

हम तो अपने नज़दीकी, अपने समीप के सम्बन्धियों को भी क्षमा नहीं कर पाते. इनको क्षमा करने की बात किसको समझ आएगी. उसको जिसके हृदय में करुणा उत्पन्न हो चुकी हो , दीनता हो, सरलता हो, ईश्वर की समीपता जैसे गुण हों . हम कितनी भी साधना कर लें - आठ-आठ घंटे साधना कर लें - यदि हममें ये गुण नहीं आएंगे , हमारा अधिकार नहीं बनेगा . हम अपने प्रीतम के चरणों तक नहीं पहुँच पायेंगे . भगवान कृष्ण का मुख्य गुण और हम सब के लिए जो आदेश है वो भी यही है - प्रेम करो, प्रेम करो, प्रेम करो. फरीद जी भी यही कहते हैं कि क्षमा करके प्रेम करो. जो तुम्हें सताये तुम उसके घर जाकर उसके पाँव चूमो. हम ऐसा नहीं कह सकते , ऐसा नहीं कर सकते , ऐसा तो महापुरुष ही कह सकते हैं कि क्षमा करके प्रेम करो . पहले क्षमा , फिर प्रेम, फिर सेवा

भगवान् कृष्ण के कर्मयोग में कर्म, अकर्म और विकर्म - ये तीन प्रकार के कर्म भी यही बता रहे हैं. हम गीता पढ़ते हैं पर उसका भाव हमारे अंदर नहीं उतरता , हमारे व्यवहार में नहीं आता. हमारे अपने मन में जो विचार उठते रहते हैं उनमें वो भाव उतरता ही नहीं. हम कहने को तो अच्छे-अच्छे वस्त्र पहन लेते हैं , मधुर वाणी भी बोल लेते हैं परन्तु हमारे भीतर में अभी वो गुण नहीं हैं जिनसे भगवान के चरणों में पहुंचने का हमारा अधिकार बने.

कहते हैं कि ईसा का दूसरा जन्म जेरूशलम में हुआ . वहां इनके नौ मित्रों में से एक मित्र जॉन ने इन्हें धोखा दिया जिसके कारण इन्हें फांसी पर चढ़ना पड़ा . १३-१४ वर्ष बाद जॉन भगवान् को मिला तो उन्हें देखकर बड़ा लज्जित हुआ और डरा . भगवान् कहने लगे - जॉन, भयभीत न हो . तुम तो मेरे मित्र थे, तुम क्यों भयभीत हो. उन्होंने उसका आलिंगन किया और उसका उद्धार किया . अपने को तो सभी माफ कर देते हैं परन्तु जो हमें कष्ट दे, दुःख दे , जो हमारा कथित शत्रु हो - उसको हम स्वतः ही क्षमा कर दें . हमारा स्वभाव ही ऐसा हो जाए कि हमें प्रयास न करना पड़े , सोचना भी न पड़े कि मैं इसे क्षमा करूँ या न करूँ . हज़रात ईसा का स्वभाव है - सहज स्थिति जिसे अंग्रेजी में "सेकिंड नेचर " कहते हैं. उनकी क्षमा का प्रवाह गंगनीर की तरह बह रहा है .सबको क्षमा, सबको क्षमा, सबसे प्रेम सबकी सेवा. इनमें जो मुख्य गुण था वो था सरलता . राग-द्वेष नहीं था . राग से भी सरलता नहीं आती और द्वेष से भी सरलता नहीं आती. कोरे प्रेम से और किसी के प्रति बुरी भावना न रखने से भी सरलता नहीं आती. सरलता एक महान गुण है , संतों की आत्मा का , परमात्मा का गुण है.

ईसा मसीह में सरलता के साथ-साथ शिशुवत भोलापन (इन्नोसेंस) था . अतीत की न कोई स्मृति, न ही भविष्य की कोई चिंता . आत्मरूपी सूर्य प्रकाशित हो रहा था , सबको ज्ञान दे रहे थे. परमेश्वर में ऐसा दृढ विश्वास था कि हमारी जितनी भी आवश्यकताएं हैं उनके लिए हमें काहे की चिंता करनी है. बाप चिंता करता है बेटे की. बेटे को बाप के रहते हुए चिंता करने की क्या ज़रुरत है ? जब-जब हमें किसी वस्तु की आवश्यकता होती है, हमें वो वस्तु मिल ही जाती है. .

अपने अनुयायियों से ईसा कहते थे कि वे अपने सच्चे बाप ईश्वर में विश्वास क्यों नहीं करते ? ईश्वर तो भूलता नहीं है. नवजात शिशु क्या माँ से कुछ मांगता है ? वह कहते हैं - " मैं और मेरे पिता एक हैं , मैं उसका पुत्र हूँ ." (आई ऍम हिज सन. आई एंड माय फादर आर वन).

हम सबको पुत्र बनना है परन्तु हम अपने व्यवहार से बाप बनते हैं. बड़े ही चतुर बनते हैं हम . हमारी वाणी चतुराई से , हमारा व्यवहार होशियारी से भरा पड़ा है. हम स्वयं को बुद्धिजीवी कहते हैं. चाहिए तो यह कि हम सरल बनें . माँ की गोद में जाने के लिए बच्चे में जो गुण होते हैं , उन गुणों के प्रति अपने मन में लगन पैदा करें . किसी का शोषण न हो , सत्यतापूर्ण विनीत भाव से हमेशा प्रभु के चरणों में अपने मन को जोड़े रखें , जैसा कि हज़रत ईसा ने अपने आपको न्योछावर कर दिया. हज़रत ईसा बनना है तो उनके जैसे गुण सीखो. किसी का शोषण मत करो, मधुर व्यवहार हो, मिठास और सबसे आत्मीयता हो. हम सब भगवान् राम के , भगवान् कृष्ण के प्रतीक हैं . परन्तु हम सच्चे प्रतीक तभी कहला सकते है जब हम परमात्मा के गुणों को अंगीकार करें . नहीं तो हम भी राक्षस कहलायेंगे . रावण को ब्राह्मण होते हुए भी संसार ने उसे राक्षस कहा , पर क्यों ? इसलिए क्योकि ब्राह्मण होते हुए भी , वेदों का ज्ञान होते हुए भी , उसने इन गुणों के विपरीत अपना जीवन व्यतीत किया. अनाचार और दुराचार किया . इसलिए लोगों ने उसे राक्षस कहा. देखा जाय तो हम सब राक्षस हैं. जो व्यक्ति ईश्वर के गुणों को नहीं अपनाता है वो भले ही अपने देह की सजावट करे परन्तु वास्तव में तो वह राक्षस है. ईशावास्योपनिषद में तो स्पष्ट लिखा है - पहले दो श्लोकों में सारी ब्रह्म विद्या सूत्र रूप में बता दी है. परमात्मा सर्वत्र है और प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वो आत्मा का साक्षात्कार करे और जो उसकी वास्तविकता है (यानी मैं और मेरे पिता एक हैं) उसका साक्षात्कार करे.

भगवान् कृष्ण ने गीता में ज्ञान और भक्ति की साधना बताई है. पर जो लोग ज्ञान-भक्ति की साधना नहीं करते उनको कर्मयोग का साधन विस्तार से बताया है कि हमें कैसे कर्म करने चाहिए. हम ऐसे कर्म करें कि जिससे हम जन्म-मरण के चक्कर में न पड़ें . हम सूर्य कि तरह प्रकाश तो दें , सेवा तो करें, किन्तु कर्म का फल हमको नहीं लगे, भगवान ने इसकी कला हमको बताई है कि संसार में तो रहें परन्तु किसी भी कर्म की छाप हमारे चित्त पर न पड़े जिससे हमारा दूसरा जन्म हो. उसी उपनिषद के तीसरे श्लोक में लिखा है कि यदि इन दो रास्तों में से कोई भी रास्ता व्यक्ति नहीं अपनाता तो वह व्यक्ति राक्षस है.

हम मनन करें कि हमको कौन सा रास्ता अपनाना है - ज्ञान और भक्ति का या कर्म का. शास्त्रानुसार हम कर्म करते हैं या शास्त्रों के अनुसार हमको ज्ञान साधना करनी है. यदि नहीं की तो हम क्या कहलायेंगे. स्वनिरीक्षण करके आप अपने आप को टटोलें कि हम किस श्रेणी में आते हैं.

जन्म भले ही ब्राह्मण के घर में हो किन्तु वास्तव में वह ब्राह्मण नहीं यदि वह ब्राह्मण के गुण नहीं अपनाता . इसी प्रकार से जन्म क्षत्रिय या वैश्य के घर हो पर यदि वह व्यक्ति क्षत्रिय या वैश्य के गुण नहीं अपनाता तो वह क्षत्रिय या वैश्य नहीं. शूद्र वह नहीं जो किसी शूद्र के घर में पैदा हो गया , शूद्र कर्मों से होता है. मनु महाराज ने कर्मों के आधार

पर बटवारा किया है परन्तु यह ऐसा क्रम बन गया है कि ब्राह्मण के घर में चाहे चोर ही पैदा हो जाय वह ब्राह्मण ही कहलायेगा . क्षत्रिय के घर कोई नपुंसक पैदा हो जाय तो वह क्षत्रिय कहलाता है. वैश्य के घर में कोई शोषण करने वाला पैदा हो जाय तो वह वैश्य ही कहलाता है और शूद्र के घर में कोई बड़ा अफसर बन जाए तो भी वह शूद्र ही कहलाता है.

मनु महाराज की वर्ण-व्यवस्था में या अन्य शास्त्रों के अंतर्गत यह भावना नहीं थी . ऐसी भावना होती तो ये जो तीन अध्याय गीता में लिखे गए हैं कर्मों पर , वो किसी और ढंग से लिखते . अर्जुन को प्रेरणा दी है कि तू क्षत्रिय है , तेरा धर्म क्या है ? सोच और उसके अनुसार कर्म कर.

सारांश यह है कि महापुरुष आते हैं और प्रभुकृपा से आते रहेंगे . परन्तु हम उनके जन्म दिन मनाते हैं केवल ऊपरी दिखावे के साथ - रीति रिवाज़ के तौर पर. ऐसे दिन सभी देशों और सभी कौमों के लोग मनाते हैं . परन्तु क्या लाभ है ऐसे दिन मनाने का यदि हम उन महापुरुषों के गुणों का स्मरण करके उन गुणों को स्वयं अपने जीवन में नहीं उतारते ? भगवान् के मुख्य गुण हैं - क्षमा , प्रेम और सेवा . प्रत्येक व्यक्ति सच्चा ईसाई , सच्चा सिख या मुसलमान बन सकता है या सच्चा आर्य बन सकता है जब वह इन महापुरुषों द्वारा चरितार्थ किये गए ईश्वरीय गुणों को अपनाएगा .

गुरुदेव सबको शक्ति दें - सब का कल्याण करें.

मनमानी करने की वृत्ति को तिलांजलि दें ; सेवा व्रत लेकरगुरुदेव को सच्ची श्रद्धांजलि दें

मनुष्य को यह चोला मिला है . वह बड़ा भाग्यशाली है . परन्तु मनुष्य का अतीत उसके साथ है जो मन का रूप लेकर उसकी प्रगति में बाधा डालता रहता है . परमपिता परमेश्वर ने प्रत्येक मनुष्य को बुद्धि भी दी है परन्तु हम सामान्यतः उसकी परवाह न करते हुए अपनी मनमानी करते रहते हैं. जो व्यक्ति मनमानी करेगा वह परमार्थ के रास्ते में कभी उन्नति नहीं कर सकेगा . मेरा तो यह भी कहना है कि ऐसे व्यक्ति का अपना व्यक्तिगत जीवन और पारिवारिक जीवन भी ख़राब होता है - ईश्वर तो बहुत दूर हैं . जिसका मन और जिसकी बुद्धि किसी को बिकी नहीं है और उसके अनुसार वह व्यक्ति चलता नहीं है , वह खुद को भी दुखी करता है .

हमारे यहाँ जो साधना है या परमार्थ है , वह सब एक विचित्र अवर्णनीय आनंद की प्राप्ति, या दूसरे शब्दों में कहें तो , वह परमात्मा की प्राप्ति के लिए है . ईश्वर तो आनंद के सागर हैं - पर हम अपना अमूल्य समय व्यर्थ खोते रहते हैं . गुरु महाराज भी असंतुष्ट होकर यह बात कहा करते थे कि " आप सत्संग में आ गए तो अब आपका व्यव्हार सामान्य व्यक्ति के व्यव्हार से अलग होना चाहिए . यहाँ आकर संसारी बातों में भी आप हमारा परामर्श नहीं मानते , उस पर ध्यान नहीं देते , तो परमार्थ की तरफ जब हम कुछ कहेंगे तो आप क्या करेंगे ." बड़ी निराशा से उन्होंने ये शब्द कहें थे और उनकी निराशा को में भी कई बार दोहरा चूका हूँ . अपने शरीर त्यागने से कुछ महीने पूर्व उन्होंने ये शब्द कहें थे कि " जैसा मैं अपने भाइयों को बनाना चाहता था, मुझे अफ़सोस है कि एक भी शख्स (व्यक्ति) मेरी आशा के मुताबिक नहीं बन पाया ." ये शब्द उन्होंने मुझ से कहें थे और मेरे साथ २०-२५ आदमी और भी उस वक्त सिकंदराबाद के उस मकान के दालान में थे . उन्होंने कोई व्यक्तिगत नहीं कहा था , सबको कहा था और मुझे सम्बोधन करके कहा कि " देखना सरदारजी , हमारे बाद यम और नियम का सख्ती के साथ पालन कराना." में यही बात कई दफ़ा कह चूका हूँ मगर यह मेरी अपनी कमज़ोरी है कि में उनकी इस आज्ञा का पालन न करा सका .

बिना मानसिक अनुशासन के परामर्श का लाभ नहीं मिलसकता . जब तक मनुष्य मनमानी, मनचाही करता है उसे आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता . मनुष्य की प्रकृति है , उसका स्वभाव है कि वह समझता है कि इस संसार में मेरे सिवा और कोई बुद्धिमान है ही नहीं . मैं जो सोचता हूँ , जो करता हूँ , वो ही सही है . वो किसी के आधीन होकर चलने के लिए तैयार ही नहीं है . गुरु इसलिए किया जाता है कि हम गुरु के पास अपना मन बेचते हैं . जब व्यक्ति दीक्षा लेते हैं तब वे कहते हैं कि " मैं आपके चरणों में अपना

तन, मन, धन सब बेचता हूँ ." किन्तु व्यवहार मेँ तो ये सब फ़र्ज़ी होता है . महाराज जनक जी की तरह मुनि अष्टावक्र के चरणों मेँ मन अर्पण कर दिया जाय . वो भी बड़ी मुश्किल से कर पाए थे . महाराज जनक भी भूल गए थे , हम तो खैर साधारण व्यक्ति हैं .

मन बेचना आसान काम नहीं है. हमारे देश की एक महान प्रथा है - पाणिग्रह संस्कार इस में जब पति - पत्नी का विवाह होता है उस वक्त पत्नी अपना मन बेचती है . हम अपनी बहनों की प्रशंसा करते हैं. व्यक्तिगत रूप से मैं तो उनकी बहुत हे इज़्ज़त करता हूँ क्योकि जितना स्त्री अपना मन बेचती है पुरुष उतना कभी नहीं कर पाते और जब तक व्यक्ति अपना मन किसी को समर्पण नहीं करता है , वह आत्मा के समीप नहीं पहुँच सकता .स्वनिरीक्षण करना चाहिए कि हमें आत्मा का साक्षात्कार क्यों नहीं हो रहा है . इसका एक ही कारण है कि अभी तक हमने मन बेचा तो था मगर वह फ़र्ज़ी बनावटी रूप में बेचा था .मन को वास्तव में बेचना है . आखिर यहीं आकर कहना पड़ता है जैसा कि रामायण में है और गुरु ग्रन्थ साहब तथा अन्य सब संत भी कहते हैं , " जेहि विधि राखे राम , तेहि विधि रहिये ." मज़बूरी में ऐसे रहना तो और बात है परन्तु मन बेचना और जो परमात्मा करे वो ही ठीक है - ऐसा सचमुच में मानना और उसी तरह अपने जीवन को ढालना - सच्ची साधना है. अर्जुन भगवन के चरणों में कितने समय तक रहा , उसका बड़ा निकट का सम्बन्ध भी था और ह्रदय का सखा भी है , परन्तु अर्जुन प्रश्न् पर प्रश्न किये जाता है .उसका मन अभी प्रभु के चरणों में बिका नहीं है , नहीं तो एक बार प्रभु कह देते तो अर्जुन के मन में शंका उठनी ही नहीं चाहिए थी . परन्तु अर्जुन में एक बात ज़रूर थी की उसने भगवान के चरणों को छोड़ा नहीं . भगवान् को संतुष्ट करने का उसने हमेशा प्रयास किया . उसके जीवन से तो हमें प्रेरणा मिलती है वरना लोग तो छोड़ देते हैं - खासकर तकलीफों में कहते हैं यह हमारा गुरु क्या हुआ जो हमारे कष्ट दूर नहीं करता .हमारे पास भी रोज़ पत्र आते हैं . ऐसी भी चिट्ठियां आती हैं जिनमे अपने दुःख - सुख के लिए हमें दोषी बनाते हैं . वास्तव में दुःख-सुख तो मनुष्य तभी भोगता है जब वह मन के स्थान पर होता है . जब मन आपने बेच दिया तो मन तो आपके पास है ही नहीं . फिर कौन दुःख को भोगेगा कौन सुख को भोगेगा . दोनों ही परमार्थ के रास्ते पर रूकावट डालते हैं . ये हमारा अहंकार है कि जब किसी को सच्ची बात बोल दो तो भी वह मानने को तैयार ही नहीं होता . इस अहंकार को छोड़ें . साधारण व्यव्हार में अहंकार को छोड़ें . हम कितनी ही पूजा पाठ कर लें, दो-दो घंटे , चार -चार घंटे आँखें बंद कर लें परन्तु यदि हमने मन को नहीं साधा है तो हमें हमारी साधना का विशेष लाभ नहीं हुआ है . मैं भी अनेकों गलतियां करता हूँ , सब लोग गलतियां करते हैं . परन्तु गलती करके गलती को मानना बड़ी बहादुरी है . गुरु महाराज बड़े असंतुष्ट होकर यह कह रहे हैं " तुम संसार की बातों के लिए आते हो हमारे पास . हम परामर्श देते हैं किन्तु आप मानने को तैयार नहीं होते . हम जब आपको परमार्थ के रास्ते पर कुछ कहेंगे तो आप उसे क्या मानेंगे . " तो आपने क्या गुरु किया, क्या दीक्षा ली , आप क्या शिष्य बने ? कुछ नहीं. इस रास्ते पर चलने के लिए तो बड़ी दीनता की ज़रुरत है . दीनता यह नहीं कि हाथ जोड़ लिए . दीनता यह है कि जो गुरु कहे , जो सच्चा बाप कहे , जो परमात्मा कहे उसके आदेशों को बिना चूं

-चड़ाक किये हुए उसका पालन करें . वो दुःख देता है तो ठीक है , वोह हमें राजा बना देता है तो भी हम उसके कृतज्ञ हैं . इसी रास्ते पर चलते हुए दीनता इतनी बढ़ जाती है कि व्यक्ति अपने अस्तित्व को भूल जाता है . ये दीनता ही आपको गुरु रूप बना देती है .ईश्वर की निकटता देती है . " जब लग मैं था गुरु नाहीं , अब गुरु है मैं नाहीं .".

हम गुरु के निकट जाकर तो सोचेंगे कि अब मनमानी नहीं करेंगे , दीनता से रहेंगे परन्तु हमें इसे व्यवहार में भी लाना चाहिए . परिवार में बच्चे माता-पिता के कहने में हों , पति-पत्नी आपस में सहयोग करें . पति यदि कोई बात कहता है जो पत्नी के हित हो तो कम से कम वो तो माननी चाहिए और यदि पत्नी पति के हित की कोई बात कहती है तो पति को अहंकार नहीं करना चाहिए और उस बात को मान लेना चाहिए . सबसे पहले तो दीनता का अभ्यास घर में ही करना चाहिए . अहंकार को, मनमानी को छोड़ना चाहिए . सिर्फ यह सोचना कि मैं पति हूँ , मैं घर में बड़ा हूँ , मुझे घर में कोई कुछ नहीं कह सकता -- ये सब अहंकार है. इस रास्ते पर चलने के लिए मन को बहुत सूक्ष्म , सरल बनाने की आवश्यकता है . किसी पर अपनी मर्ज़ी नहीं थोपनी चाहिए , खासकर गुरु के पास - जिसे हमने अपने आपको बेचा है , तन - मन - धन से बेचा है . गुरु किया ही इसीलिए जाता है कि वो प्रति-क्षण हमारे मन की चौकीदारी करे . जैसा गुरु कहे वैसा हम करें - ये अभ्यास हमें करना है . पूजा का अपना महत्व है परन्तु अभ्यास को व्यावहारिक रूप देना अधिक आवश्यक है . जब तक हमारी साधना - हमारी पाठ-पूजा व्यव्हार में नहीं उतरेगी तब तक पूजा-पाठ में विशेष लाभ नहीं होगा . हम दो घंटे सत्संग के कमरे में बैठ के साधना करके आये और तुरंत ही हमें क्रोध आगया तो हमारी साधना ख़त्म हो गयी . क्या लाभ है उस साधना का ? हम व्यव्हार करते हुए दूसरे का शोषण करते हैं तो साधना का क्या लाभ ?

पूज्य गुरु महाराज कहा करते थे कि संसार हमें खूब देखता है , निरीक्षण करता है विशेषकर उनका जो अपने आप को कहा करते हैं कि हम सत्संगी हैं . संसार उनको सिर से पाँव तक देखता है और कोशिश करता है कि देखें कि उनमें कोई नुख्स तो नहीं है . इसीलिए कबीर साहेब अपनी वाणी में लिखते हैं : " निंदौ निंदौ , मोको निंदौ -----" तथा " निंदक नियरे राखिये , आंगन कुटी छवाय ." निंदक जो है वोह ही मेरा सच्चा मित्र है अर्थात जो मुझे मेरे अवगुण बताता है वो ही मेरा सच्चा मित्र है , वो ही मेरा गुरु है , वो ही मेरा परमात्मा है . हमें कोई हमारी इच्छा के प्रतिकूल कोई बात कह देता है तो हम क्रोध में पागल हो जाते हैं . तो सत्संग में आकर हमें इस मन को बनाना है . जब कभी भी हमें कोई कठनाई पेश करे या कोई बात हमारी समझ में नहीं आये तो हमें तुरंत अपने गुरु के पास जाना चाहिए . गुरु नहीं हैं तो माता-पिता के पास जाना चाहिए , माता-पिता नहीं हैं तो किसी मित्र के पास जाना चाहिए .किसी का तो बन कर रहना चाहिए , अपनी मनमानी नहीं करनी चाहिए .

मन ने किसी को आज तक मोक्ष नहीं दिलवाई . यदि मोक्ष की इच्छा है तोपहले अपने मन को दे दो, किसी को बेच दो . देकर देखो तो सही कि कितना आनंद है . कोई अपना मन नहीं देता और इसीलिए परेशान रहता है . यदि हममें प्रगति नहीं हो रही है , आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो रहा है तो उसका दायित्व हमारे मन

पर है . उसके लिए हम स्वयं ज़िम्मेदार हैं . पूज्य गुरु महाराज की अभिलाषा को संतुष्ट करने के लिए अब हमें कुछ करना चाहिए , अब जबकि हम लोग उनकी जन्म शताब्दी मना रहे हैं . मैंने कुछ समय पहले भी इस विषय पर कुछ विचार रखे थे . हम उसके मुताबिक सेवा में अपना योगदान दें . जो भी हम कर सकते हैं करें . मैं आभारी हूँगा .

देश में महात्मा गांधीजी की १२५-वी जन्मतिथि "एकता" के रूप में मनाई गयी. एकता अच्छा भाव है . हमें भी एकता का अभ्यास करना चाहिए . हम सब एक हैं, एक पिता की संतान हैं. सब भाई-बहिनों को एक ही परिवार का सदस्य समझना चाहिए और आपस में प्रेम करना चाहिए . खेद है कि सत्संग में भी आपस में प्रेम नहीं है , जितना होना चाहिए. आजकल संसार में जो कुछ हो रहा है, अपने देश में भी जो कुछ हो रहा है, उसको देखकर बड़ा दुःख होता है. महात्मा गाँधी का जो जीवन था उसकी तरफ किसी का ध्यान नहीं है . वो कर्मयोगी थे, गीता के पुजारी थे. उन्होंने गीता की विवेचना भी लिखी है. उसकी भूमिका में लिखा है कि " मैं नहीं कह सकता कि वास्तव में भगवान ने गीता उच्चारण की है या नहीं . ये वेद व्यास जी की ही अपनी कृति है या जैसे भी है, परन्त गीता में जो कुछ भी लिखा है उससे बड़ी प्रेरणा मिलती है . मेरे जीवन का तो वही गुरु है ." गाँधी जी का जीवन एक कर्मयोगी का, सेवा का रूप रहा है . हमारी सनातन संस्कृति में सेवा का बड़ा महत्त्व है. हमारे यहाँ मुख्य रूप से चार साधन हैं - योग का , ज्ञान का, भक्ति का और कर्म का . कर्म का दूसरा नाम सेवा है . सेवा है, ईश्वर की सेवा - सबकी सेवा करते हुए ईश्वर की सेवा . शास्त्रों में लिखा है कि जो कोई इन चार रास्तों में से कोई सा रास्ता नहीं अपनाता वह असुर है. वास्तव में यदि हम स्व-निरीक्षण करें तो हम सब असुर हैं. न तो हम ब्राहमण हैं, न हम सिख हैं, न हम राजपूत हैं , न वैश्य है और न कुछ और हैं. कोई कह सकता है कि इन चार रास्तों पर किसी ने परिपक्वता हांसिल कर ली है . किसी का जीवन उतना आदर्श नहीं है . गांधीजी की भी यही प्रेरणा थी . काश ! भारत सुनता उनकी आवाज़ को. उनका नाम तो सब लेते हैं पर उनके आदर्श कौन अपना सका है ?

भाइयों को कोशिश करनी चाहिए कि गाँधी जी के जीवन से प्रेरणा लें. गुरु महाराज के जीवन से प्रेरणा लें. उनकी जन्म शताब्दी मनानी तभी सफल होगी जब हम उनके जीवन के अनुसार अपने जीवन को बनाएंगे . किसी तरह भी हो सके सच्ची सेवा का भाव अपने मन में लाएं . मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे भाई लोग कोई ऐसी बात सोचेंगे कि जिससे सत्संग में एक नया रूप खड़ा हो जायेगा , जिससे सब को प्रेरणा मिलेगी , सबके जीवन में परिवर्तन आ जायेगा . तब हम गुरु महाराज के चरणों में कह सकेंगे कि हम आपका शुभ जन्म दिन भली प्रकार से मना रहे हैं . अन्यथा समय आया , समय गुज़र गया , पैसा खर्च कर दिया , कोई खास लाभ नहीं होगा . मुझे आशा है कि सबलोग मेरा निवेदन स्वीकार करेंगे कि अब दृढ संकल्प द्वारा , मन की मनमानी करने को बंद करें और गुरुदेव के मुख्य जीवन-आदर्श यानी प्रेम और सबकी

सेवा को व्यवहारिक रूप दें उनकी बताई हुई सेवा की भावना को अपने जीवन में मुख्य स्थान देकर - अपने परिवार से लेकर सारे संसार की सेवा में यथाशक्ति जो भी , जितनी भी, किसी भी प्रकार की सेवा कर सकेगा उतना ही भाग्यवान रहेगा , स्वयं को धन्य करेगा . यही उनके प्रति, उनके सिद्धांतों के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी .

गुरुदेव आपका कल्याण करें .

आनंद का भण्डार हमारे अंतर में है - उसे पाने के लिए आवरण हटाने होंगे

गुरु महाराज , परमसन्त डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज , ने पुराने भाइयों के लिए कुछ आवश्यक बातें बतलाई हैं , जिनको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए . बहुत से भाई-बहिन यह कहते हैं कि हमने नाम तो ले लिया परन्तु हमारे स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं आया . हमारी इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती , कोई आनंद नहीं मिलता . अधिकांश भाई-बहिन यह चाहते हैं कि उनका मन जो इच्छाएं उठाता चला जाए , उनकी पूर्ति होती रहे. यह उन भाई-बहिनों की गलती है. यहाँ आकर तो यज्ञ में आहुति देनी पड़ती है. आनंद तो है, आपके भीतर में है उसका भण्डार है. प्रथम बात जो गुरु महाराज ने बताई है वह यह है कि आप आत्मा हैं . आप वही हैं जो परमात्मा है . उसी आत्मा के आप अंश हैं और आनंद के भण्डार हैं . हमेशा-हमेशा के सुख का जीवन और सर्वोत्तम ज्ञान - जो आत्मा का ज्ञान है - वो सब आपके भीतर है. भीतर में तो है, परन्तु वह हमें प्राप्त कब होगा? सत्संग में आये अब काफी समय हो गया . हमें सावधान होना चाहिए . मृत्यु का पता नहीं , किस वक्त हमारे पास आजाये . यह शरीर छोड़ने से पहले हमें इस शरीर का मोह त्यागना है. शरीर पांच प्रकार के हैं जो हमारे सच्चे स्वरुप परमात्मा को ढके हुए हैं , जो आत्मा और परमात्मा में योग नहीं होने देते , जो हमें सच्चा आनन्द प्राप्त नहीं होने देते . सब कुछ हमारे भीतर होने पर भी इन पर्दों के कारण हम उनका अनुभव नहीं कर पाते .

इन्हें छिपाये रखने वाले पांच परदे हैं , जिनसे मुक्ति पानी है . पहला आवरण शरीर का है . एक महापुरुष ने कहा है - दो शब्दों में जीवन की यात्रा है "मैं और मेरापन ". इस "मैं" को त्यागना है जो यही बताता रहता है कि " मैं शरीर हूँ". हम शरीर नहीं अपितु आत्मा हैं . इस शरीर के साथ हमारा जो मोह है उसे हमें त्यागना है. यही वैराग है. मन शरीर के साथ बंधा हुआ है . जब तक विवेक और वैराग जाग्रत नहीं होते इस शरीर के साथ सम्बन्ध तोडना असंभव है. यह कहना कि यह तो ज्ञान योग की बात है, गलत है. भक्त को भी अपने इष्ट की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए सब कुछ न्योछावर करना पड़ता है. और सबसे पहले भक्त जो न्योछावर करता है वो भी तो उसी का रूप है. भक्त भी शरीर को यह मानकर चलता है कि ये इष्ट का है, अपना नहीं. ज्ञानी कहता है - मैं शरीर नहीं हूँ, और उधर भक्त शरीर को अर्पण कर देता है. दोनों में विशेष अंतर नहीं है. हमारे गुरु महाराज भक्ति,ज्ञान और कर्म - इन तीनों को इकट्ठा लेकर चलते थे . तर्क-वितर्क नहीं करते थे , इन तीनों योगों के बारे में. साधना के ये तीनों मुख्य रास्ते हैं. अन्य भी हैं पर ये तीनों मुख्य हैं. पूज्य गुरु महाराज ने इन तीनों को लिया हैं. इसलिए यह हठ नहीं करना चाहिए कि मैं भक्त हूँ या मैं ज्ञानी हूँ या मैं कर्मयोगी हूँ. हम सब तो गृहस्थ में रहते हैं अतएव हमें इन तीनों साधनों को अपनाना हैं. यही तीनों योग भगवान कृष्ण ने अर्जुन को समझाए हैं. गुरु महाराज ने , या आपके इष्टदेव जो भी रास्ता आपको बताया हैं उसको पकड़िए, उस पर चलिए .

हमारा यह शरीर ही हमारे अपने स्वरुप को देखने में पहली बाधा है. अपनी बुद्धि (विवेक) से हमें यह समझना चाहिए कि यह शरीर तो नश्वर है , थोड़े समय के लिए रहेगा , फिर अग्नि में जला दिया जायेगा . परन्तु आत्मा, जो हमारा वास्तविक स्वरुप है, उसको जलाया नहीं जा सकता . अपने स्वरुप को पहचानने के लिए इस पहली बाधा - शरीर, से मुक्ति प्राप्त करनी होगी, जिसके लिए हमें मोह का त्याग करना आवश्यक है. हमारा इस शरीर के साथ जो मोह है वो तो हमें त्यागना ही पड़ेगा . सारा सन्सार इसी में फंसा हुआ है. ज्ञान या भक्ति की बातें कहने में बड़ी सरल लगती हैं, परन्तु उनको व्यवहार में लाने में बड़ी कठिनाई आती है. कौन कहेगा कि मैं अपने शरीर के साथ मोह छोड़ दूँ. – इसको नहलाऊं -धुलाऊँ नहीं इसको कपडे नहीं पहनाऊं , इसका श्रृंगार नहीं करूँ ? कौन मानेगा हमारी बातें ? परन्तु जब तक हमारे शरीर के साथ हमारी आसक्ति है , मोह है और जब तक इस मोह को हम छोड़ेंगे नहीं , हम भीतर की यात्रा नहीं कर पाएंगे. हमारे अपने शरीर के साथ, सन्सार के अन्य शरीरों के साथ , हमारे सम्बन्ध हैं , जिनमें मनुष्य जकड़ा हुआ है

कुछ लोग कहते हैं कि दस-बीस साल में हमें मुक्ति मिल जाये . मिल सकती है - क्षण भर में मिल सकती है . परन्तु जब हम मोह और आसक्ति रुपी अज्ञान को त्यागें तभी आगे का रास्ता खुलेगा . अभी तो हम इसी में फंसे हुए हैं , चौबीसों घंटे इसी को सवारते रहते हैं . इससे छूटने का उपाय यही है कि जो साधना आपको आपके गुरु ने बताई है वो साधना करो. आपको गुरु ने रास्ता बताया है कि अपने भीतर में जाओ , अपने आप को पहचानो . अभी तक हमारे आस-पास एक भी व्यक्ति नहीं है जिसका अपने शरीर के साथ सम्बन्ध टूटा हो . सब मन और शरीर के बन्धन में ही फंसे हुए हैं . हां , मोह का त्यागना बहुत कठिन होता है. हमारा अपने शरीर के साथ सर्वाधिक मोह रहता है. ' मेरा शरीर' और मेरे शरीर के साथ मेरी धन-दौलत , ज़मीन-ज़ायदाद , संतान-रिश्तेदार आदि . इन सबका त्याग करना है - विवेक के द्वारा , ज्ञान के द्वारा .

आप सत्संग में आये हैं , दीक्षा ली है तो इन सब बातों को समझना चाहिए, मनन करना चाहिए और अपने आप को पहचानने का गंभीर प्रयास करना चाहिए . तो पहला कदम तो इस शरीर के साथ मोह छोड़ने का है. इसका उपाय यह है कि आप जो भी, जितने भी कर्म करें , ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए कीजिये . सभी को ईश्वर का रूप समझकर उनकी सेवा करो परन्तु फंसो नहीं. हमको कर्म करना है और कर्म करके कर्म और उसके कर्मफल दोनों ही को ईश्वर के चरणों में, अपने इष्टदेव (गुरु) के चरणों में अर्पण करना है.

पहला पड़ाव तो शरीर के साथ मोह त्यागना हुआ . इसके बाद दूसरा परदा (आवरण) है प्राणों का. तीसरा है मन का . यह और भी कठिन है. चौथा बुद्धि का है और यह उससे भी कहीं ज़्यादा कठिन है . यहाँ हम मन और बुद्धि दोनों की बाधाएं इकट्ठी ले लेते हैं . अधिकांश हम लोग तर्क-वितर्क करते रहते हैं .हम देखते हैं, सुनते हैं, शरीर को कुछ महसूस होता है , तो हमारा मन उसकी प्रतिक्रिया करता है . हमने आम खाया , बड़ा मीठा है. दूसरे ने खाया, बड़ा खट्टा है. किसी व्यक्ति को देखा तो उसी वक़्त प्रतिक्रिया करते हैं - यह बड़ा सुन्दर है, यह बड़ा स्वार्थी है, आदि. हम प्रति क्षण प्रतिक्रिया करते रहते हैं. हांलाकि हम सारा दिन विचार उठाते रहते हैं, किन्तु हम कोई गंभीर चिंतन-मनन नहीं करते. हमारा प्रत्येक विचार प्रतिक्रिया का रूप होता है . जब तक प्रतिक्रिया होती रहेगी, हमारा मन कैसे स्थिर होगा ?

भगवान् ने अर्जुन को बुद्धि की सम अवस्था ही तो समझाई है. साधना में पहला चरण - बुद्धि की सम अवस्था - जब तक नहीं आएगी , भीतर में आनंद नहीं आ सकता , दुःख-सुख , भला-बुरा , मान-अपमान या लाभ-हानि ,आदि ये जो द्वन्द हैं, उनसे मुक्त होना होगा. इन द्वंदों के रहते हुए भी सम-अवस्था आनी चाहिए . आगे चलकर भगवान् कहते हैं कि इस समबुद्धि को अपनी आत्मा में लय कर दो . गीता के दूसरे अध्याय में शुरू के ४०-५० श्लोकों तक यही बुद्धि को सम अवस्था में लाने का उपदेश दिया गया है. फिर स्थितिप्रज्ञ अवस्था के लिए आगे के २० श्लोक हैं. साधारणतः मन भीतर में नहीं जाएगा . मन आत्मा के भीतर में प्रवेश नहीं करेगा , बुध्दि प्रवेश नहीं करेगी, जब तक कि ये सम अवस्था में नहीं आजायेंगे . चंचल मन, चंचल बुद्धि आत्मा के भीतर में प्रवेश कर ही नहीं कर सकते . हैं

यही कारण है कि हम सब का मन दुखी रहता है. हमें सुख नहीं मिलता, भीतर की शांति नहीं मिलती क्योकि हमारे मन और बुध्दि में स्थिरता नहीं है, समता नहीं है. जब तक वो सम अवस्था में आकर आत्मा में विलय नहीं होंगी तब तक सच्चा आनन्द कैसे प्राप्त होगा. गीता में यही सार-तत्व समझाया गया है कि पहले मन कि चंचलता को ख़त्म करो, बुद्धि की चंचलता को ख़त्म करो , इन्हें सम -अवस्था में ले आओ . दुःख-सुख जो कुछ भी आएं , उसमें सम रहो. महात्मा बुद्ध ने भी ऐसा ही साधन लिया . उन्होंने अगला यह साधन नहीं लिया कि सम बुध्दि को आत्मा में लय कर दो. भगवान् कृष्ण ने दोनों साधन बताये हैं. भगवान कृष्ण का उपदेश हमारी ज़्यादा सहायता कर सकता है. यह ज़्यादा व्यापक , उपयोगी और हमारे लिए अनुकरणीय है.

मन और बुध्दि का आवरण हटाने के लिए सबसे पहले प्रतिक्रिया न करने की आदत डालो. आदत डालो, प्रायः मौन रहने की. मौन का मतलब यही है कि हम प्रतिक्रिया न करें. सत्संग में बैठ कर भी हमारी चंचलता ख़त्म नहीं होती है तो सत्संग के बाहर क्या होगी? हम किसी बक्त भी तो चुप करके नहीं बैठते. किसी की बुराई कर रहे हैं, किसी की स्तुति कर रहे हैं. कोई हमें अच्छा लग रहा है, कोई बुरा लगता है. यानी हमारा मन शान्त नहीं बैठता . मन शांत नहीं होगा तो बुध्दि कहाँ से शांत होगी.

गुरु महाराज ने यही कहा है कि पहले मन में , बुद्धि में समता लाओ और उस सम -बुद्धि को आत्मा में लय कर दो., ईश्वर के चरणों में लय कर दो. फिर आपको सच्चा सुख, सच्ची शांति , सच्चा आनन्द प्राप्त होंगे, उससे पहले कुछ प्राप्त नहीं होगा. इसी को गुरु की चरण-शरण में आना या अपना रूप पहचानना भी कहते हैं. हमें करना यही है. कितनी विचित्र बात है कि हमारे भीतर में आत्मा है, परमात्मा है किन्तु हम परमात्मा होते हुए भी अवगुण करते हैं . अपने स्वरुप को हम ऐसे भूल गए हैं कि मानो हम उसे जानते ही नहीं. उस स्वरुप का जो व्यवहार होना चाहिए, वह व्यवहार हमारा है ही नहीं. कैसी बेतुकी सी बात है कि हम स्वयं परमात्मा हैं पर फिर भी दुखी हैं - जबकि हम आनन्द के भण्डार , शांति और सुख के भण्डार हैं . यही दशा अज्ञान कहलाती है. इसी अज्ञान को दूर करने के लिए ही तो साधन किया जाता है - भक्ति का साधन हो या कर्मयोग अथवा ज्ञान का साधन या कोई अन्य साधन भी हो सकता है.

सरल साधन यही है कि यदि कोई ऐसा महापुरुष मिल जाय जिसने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया हो तो उसकी शरण ले लें और उसके बताये हुए रास्ते पर चलें . धीरे-धीरे उस मार्ग-दर्शक की सहायता से हमें अपने भीतर के ढके हुए अनमोल ख़ज़ाने को पाने का मार्ग-दर्शन मिल जाएगा और हम उसको पहचान लेंगे . इसीलिए ऐसे समर्थ सत्पुरुष चेतावनी दिया करते हैं कि शरीर छोड़ने से पहले अपने जीवन के लक्ष्य को पहचान लेना चाहिए ताकि मरते वक्त , शरीर छोड़ते वक्त यह पछतावा न हो कि - हाय मैने सारा जीवन व्यर्थ खोया . संतों की वाणी में कहा जाता है कि ' मरने से पहले मरना ' चाहिए अर्थात जितने आवरण हैं, रास्ते की जितनी रुकावटें हैं , इनसे हमें मुक्त हो जाना चाहिए . गुरु महाराज ने इन बाधाओं या पांच प्रकार के शरीरों के आवरणों को हटाने का जो उपदेश दिया है, उनमें पांचवा आवरण अति सूक्ष्म कारण रूप चित्त का है जो ऊंची हालत के साधकों को भी डांवाडोल कर देता है

हमारे चित्त पर भी जन्म-जन्मांतर के संस्कार पड़े हुए हैं , सूक्ष्म रूप से अंकित हैं . चित्रगुप्त महाराज ने हिसाब-किताब लिखा हुआ है और उसकी एक कंप्यूटर-कॉपी हमारे चित्त पर अंकित की हुई है. इन संस्कारों से मुक्त होना आसान बात नहीं है, यह अत्यन्त दुष्कर   कार्य है. यह भी हो सकता है कि किसी के पिछले जन्म के शुभ संस्कार हों . जब वो इस सन्सार में आते हैं तो बचपन से ही ईश्वर से नाता जोड़ लेते हैं, जैसे ध्रुव ने, भक्त प्रहलाद ने या शुकदेव जी ने बचपन में ही ईश्वर के साथ एकता स्थापित कर ली थी. परन्तु हम तो ऐसे नहीं हैं. कर्मफल तो सबको भोगना पड़ेगा , तथापि उन संस्कारों को जल्दी से निबटा कर उनसे मुक्त होना ही होगा.

इन संस्कारों के प्रभाव से, प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि मेरे में क्या कमी है, मेरी क्या वृत्तियाँ हैं . हम देखेंगे कि हमारी जितनी भी इन्द्रियां हैं   हम उन सब इन्द्रियों के गुलाम हैं. खाने-पीने , कपडे पहिनने , बातें करने आदि का हमें शौक है , सिनेमा आदि अच्छी-बुरी बातें देखने की हमारी इच्छा रहती है. कौन सी इच्छा है जिससे हम मुक्त हो पाए हैं? परन्तु हम अपनी इच्छा-शक्ति या आत्मबल से कम-से-कम इतना तो प्रयत्न करते रहें कि नए संस्कार न बनने दें .

मनुष्य के प्रबल संस्कार जो प्रारब्ध बन चुके हैं उनको तो भोगना ही होगा . तो भी गुरु की कृपा से इन्हें बड़ी सहजता से कटवा दिया जाता है ,अन्यथा उन्हें भोगते हुए तो न जाने कितने जन्म और बीत जायेंगे. इस प्रकार जब हमारे चित्त से संस्कारों का पर्दा हट जाता है और नए संस्कार नहीं बनते तो साधक के मार्ग में कारण रूप में अहंकार सामने आ जाता है . बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों और रावण जैसे महापंडित और सिद्ध ज्ञानियों को अपनी साधना पर अभिमान होने लगता है - आजकल के गुरु महानुभावों का तो कहना ही क्या? इसीलिए गुरु महाराज कहा करते थे कि कोई सच्चा गुरु मिल जाय तो इस अहंकार को भी उनकी चरण- शरण में जाकर , उन्ही की सहायता और कृपा से हटा लेना चाहिए.

गुरुदेव यह भी बताते थे कि दस जन्म साधना करने और उसके बाद चार-पांच जन्म और लग जाते हैं मोक्ष प्राप्त करने में . तब भी व्यक्ति को गंभीर होना चाहिए . जैसे माता-पिता अपने बच्चे को गोद में लेकर प्रसन्न होते हैं , इसी तरह परमात्मा भी हमारा सच्चा पिता है . तभी तो हम प्रार्थना में कहते हैं ' त्वमेव माता, च पिता त्वमेव ' . ईसाई धर्म में तो परमात्मा को फादर (पिता) कहा है " माय फादर इज़ इन दी हेवन " (मेरा पिता स्वर्ग में है.) उन्होंने पिता कहा है, परमात्मा नहीं कहा . बहुत से संतों ने परमात्मा को पिता कहा है.

अन्य अनेक सन्त महापुरुष कहते हैं "तत्वमसि" या " अहं ब्रह्मास्मि" अर्थात तुम तो वही हो जो परमात्मा है - मैं भी परमात्मा हूँ . तुम परमात्मा के ही रूप हो, यह सन्सार भी परमात्मा का ही रूप है . अन्तर यह है कि परमात्मा विशाल है, आत्मा एक कण मात्र है . परन्तु है उसी का स्वरुप, वही गुण, वही रूप , वही सब कुछ है . इन पांच आवरणों के बाद आपका असली स्वरुप जो कि आत्मा है, - उसका साक्षात्कार हो सकेगा . आत्मा भी परमात्मा का ही स्वरुप है. उसमें भी वही गुण हैं जो परमात्मा में हैं . हमारे भीतर में जो आवरण हैं, जो पर्दे या दीवारें खड़ी हुई हैं , जब हम उनको हटा लेंगे तो आत्मा-परमात्मा मिलकर एक हो जायेंगे ,कोई अन्तर नहीं रहेगा.

" मन तू जोत सरूप है , अपना मूल पछाड़ " यानी तू भी वोही ज्योति स्वरुप है जो परमात्मा है. सच्चिदानंद स्वरुप के सारे गुण हमारे भीतर में हैं. साधन तुम्हारा यह है कि तुम अपने आपको पहिचानो. तुम समझ रहे हो कि मैं शरीर हूँ , मैं मन या बुद्धि हूँ - ये नहीं है. तुम वास्तव में ज्योत स्वरुप हो , आनंद स्वरुप हो, सच्चिदानंद परमात्मा स्वरुप हो.

सागर में से बादल बनकर जो पानी ऊपर जाता है वह बारिश बनकर फिर नीचे गिरता है. बारिश की उस एक बूँद में वही गुण हैं जो सागर के हैं. उस बूँद की सहज वृत्ति है कि वह समुन्द्र की ओर बढ़ना चाहती है. इसी तरह हमारे भीतर जो आत्मा है उसका भी कुदरती सहज स्वभाव है कि जहाँ से वह आई है वंही वापस पहुंचना चाहती है. बूँद ओर सागर रुपी आत्मा ओर परमात्मा में अंतर नहीं है. अन्तर मात्रा का है - लघु ओर विराट का है . आत्मा की वृत्ति तो है कि वो परमात्मा की ओर जाना चाहती है - जैसे बूँद सागर की ओर बढ़ती है. बीच में रुकावटें आ जाती हैं, आवरण आ जाते हैं, दोनों की वृत्ति यही है कि अपने विराट रूप में समां जाऊं .

परमपिता परमात्मा की भी यही बिरद है. ईश्वर भी चाहता है कि समस्त रूँहें मेरे भण्डार में आ जायें, परन्तु हम पापी हैं. तब भी हमारी कमियों ओर दोषों को देखते हुए भी प्रभु हमसे नाराज़ नहीं होते. ईसाईओं में कहते हैं कि परमात्मा का प्रथम गुण जो है वह क्षमा है. परमात्मा पापियों को भी क्षमा करते हैं . परन्तु हमारे यहाँ कर्मफल को भोगने का सिद्धांत है.

परमात्मा जो हमारा सच्चा पिता है, वो चाहता है कि मेरी सन्तान सदा सुखी रहे . वो अपनी तरफ से भी चाहता है और ऐसी विभूतियों को संसार में भेज देता हे जिन्हे हम अवतार और देवता कहते हैं, पीर-पैग़म्बर और संत -सतगुरु या मुर्शिद कहते हैं ताकि वे भूले-भटके लोगों को सन्मार्ग पर लाएं और भूली भटकी आत्माएं परमात्मा के चरणों में पहुँच जाएँ. ऐसे किसी महापुरुष का साथ बड़े सौभाग्यशाली लोगों को मिल पाता है.

सारांश में, साधक को जीवन जीते हुए ही 'मरना' है - सारे आवरणों को हटा कर अपनी आत्मा को परमात्मा में विलय करने का अभ्यास करना है. हमारी साधना का वास्तविक लक्ष्य यही है. इसके लिए पागलपन चाहिए , इसके लिए त्याग चाहिए . कोई भी रास्ता अपना लीजिये - भक्ति का मार्ग, कर्म का अथवा ज्ञान का - कोई भी मार्ग अपनाइये परन्तु उसे (परमात्मा को) पाने के लिए सतत प्रयास तो करना ही पड़ेगा.

गुरुदेव सबका भला करें.!

आध्यात्मिक परहेज़

हमारे जीवन का जो लक्ष्य होता है उस लक्ष्य को हमें ही प्राप्त करना होता है . वह लक्ष्य कैसे प्राप्त हो ? मोक्ष कैसे मिले ? वे दर्शन कौन से हैं जिनके कर लेने से निर्मल मुक्ति हो जाती है ? प्रायः देखने में आता है कि गुरु के दर्शन तो कर लिए परन्तु हमारी आन्तरिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया , वह ज्यों की त्यों वैसी ही है . यही समझने की बात है कि जब तक हमारी आन्तरिक स्थिति में परिवर्तन नहीं आयेगा , तब तक हमें सच्चे गुरु के या ईश्वर के दर्शन प्राप्त नहीं होंगे . गुरु महाराज (परमसंत डॉ . श्रीकृष्ण लाल जी) कहा करते थे कि गुरु के दर्शन करने के लिए गुरु के गुणों को तथा ईश्वर के दर्शन करने के लिए ईश्वर के गुणों को अपनाना होगा . असली साधना भी मन ही की है . किसी एक आसन में बैठना कोई बड़ा विशेष साधन नहीं है . बैठाना तो अपने विचलित मन को है . मन के बैठने पर विचलित शक्ति का संचय होता है , हमें शक्ति मिलती है , हमारा पुरुषार्थ जागृत होता है . उससे हमारा विश्वास बढ़ता है कि हमारा रास्ता ग़लत नहीं है, हम ठीक चल रहें हैं . हमें जिस लक्ष्य को प्राप्त करना है. उसके लिए दीन बनना होगा . हमें दीनता के लिये कुछ न कुछ करते रहना होगा . हम प्रातः उठकर स्नान करते हैं , शरीर को स्वच्छ करते हैं . जीव पानी में हर समय नहाते ही रहते हैं . पर क्या वे जीव पुण्य - पवित्र हैं ? बाहर के स्नान से ही कुछ विशेष नहीं होगा . हमें अन्तर का स्नान करना होगा. उस अन्तर का स्नान करना होगा जिस पर यह वाह्य शरीर कार्य रत रहता है . हमारे भीतर में जन्म - जन्मान्तर से संस्कार भरे पड़े हैं जिनके कारण यह जीवन अशुद्घ हो गया है , बड़ा अजीब हो गया है . चित्त की निर्मल पवित्रता हमारी साधना की नींव है . इसलिए हमें उस मलीन चित्त को शुद्ध और पवित्र करना है . जब तक हमारा भीतर पवित्र नहीं होगा , हमँ शांति प्राप्त नहीं होगी और जब तक हमारा अन्तर शान्त , निर्मल नहीं होगा हमें आत्मिक आनन्द नहीं मिलेगा . आत्मिक आनन्द है ईश्वर में लय हो जाना अर्थात चित्त की वृत्तिओं से ऊपर उठ आना , मन से उपराम हो जाना .

सभी ने सरस्वती देवी की तसबीर देखी होगी . उनका वाहन हंस है , जिसका रंग श्वेत है , जो पवित्रता का प्रतीक है . हंस में पक्षी होते हुए भी विवेक हम मनुष्यों से कहीं अधिक है . वह बड़ी तत्परता से रेत और पानी को छोड़ कर केवल दूध -दूध ग्रहण कर लेता है . इस प्रकार हंस बनिये . हमारी दशा क्या है ? पहले तो हम लोग शत - प्रतिशत शुद्ध नहीं हैं . पाश्विक वृति , बुराई को लोग ज़ल्दी पकड़ लेते हैं . नेकी , शुभ्रता की तरफ़ हमारा ध्यान नहीं जाता . यदि गया भी तो क्षण भर , दो - चार क्षण के लिये . इसके विपरीत बुराई की स्मृति तो लगातार बनी रहती है . हंस की वृति यह है कि वह शुभ गुणों की छान-बीन करके शुभ्रता को अपना लेता है और अवगुणी मलीनता को छोड़ देता है . हमारी ऐसी पवित्र वृति क्यों नहीं बनती ? क्योंकि हम विवेक खो बैठे हैं और वृत्तियों में लिप्त मात्र रह गये हैं . यदि अन्तर की पवित्रता नहीं बनती तो हमँ क्या करना चाहिये ? एक मात्र मार्ग है कि हम अवगुणों को छोडें और सदगुणों को अपनायें , चाहें एक - दो जीवन की बाज़ी क्यों न लगानी पड़े . तभी हम मनुष्य कहला पावेंगे , नहीं तो हम पशु मात्र हैं . . मनुष्यों में सात्त्विक वृत्ति के लोग प्रायः बहुत कम होते हैं . लाखों -करोड़ों में

कोई एक होता है जिसमेँ हंस वृत्ति होती है . हम स्वयँ ईमानदारी से अपनी दशा को , अपने व्यवहार को देखें -परखें . हम हर समय अवगुणों का ही व्यवहार करते रहते हैं . उन की ही चाहना और शकल देखते रहते हैं . हमें दूसरे की निन्दा सुननी दिलचस्प लगती है . हमारी जिव्हा से झूँठ निकलता है , बुराई का व्यवसाय चलता है , निन्दा ही निन्दा हमसे प्रस्फुटित होती रहती है , ईर्ष्या , द्वेश भावना निकलती रहती है . इसीलिये तो यदि हमें कभी कभार सत्य बोलना पड़े तो बड़ा कठिन लगता है . अगर सत्य बोल भी दिया तो हम उसे बड़ी कठोरता से , अप्रियता से बोलते हैं . हमारे व्यवहार में माधुर्य तो दूर - दूर भी नहीं है . इसी तरह आंखों से भी बुराई देखने में रुचि ली जा रहीं है .. सबसे निकृष्ठ बुराई होती है अन्तरस्थ मन की . हाथ -पाँव ,ज़ुबान जिव्हया से हम कम बुराई करते हैं . परन्तु मन से हम - आप - सब हर समय बुराई करते रहते हैं क्योंकि उसके लिए ज़ाहिरदारी या प्रत्यक्ष में हमें कोई डर नहीं दीखता , फलतः कोई संयम नहीं होता. न कोई मर्यादा न कोई अनुशासन , न अपना न समाज का , न कुल का , न ईश्वर का . चौबीसों घंटे , अन्तर मन के भीतर , रेशम के कीड़े की तरह , बुराई , बुराई , बुराई का चिन्तन रहता है . बुराई का चिन्तन करने से निन्दा उभर कर आती है , सो हम निन्दा में लिप्त हो जाते हैं . हमारे भीतर में अशुद्धि और मलीनता के अम्बार लगे पड़े हैं. तब हमारा व्यवहार और रहनी - सहनी भी मलीन हो जाती है . जब तक हम मानसिक रूप से पवित्र नहीं बनेंगे , भीतरी स्नान नहीं होगा , जो कि नितान्त आवश्यक है . हमारा वाह्य हमारे अन्तर पर निर्भर या आश्रित है . स्थूल बुराईयों का कारण है -- चाहना या भोगेच्छा की वृत्ति का मोह . महात्मा बुद्ध ने सारी बुराईयों का मूल कारण ऐसी इच्छा को ही बताया है . उपनिषदों में भी कहा गया है कि भोगेच्छा आती है तो वासना जागृत होती है . काम का अर्थ केवल कामवासना मात्र ही नहीं है . शरीर के स्पर्श से , आंखों के देखने से , जो प्रातिविम्ब या छाया हम अपने चित्त पर लेते हैं , वह सब कामना ही है . आँख , कान व जिव्हया से वासनायें बुराई में लिपट कर हमारे अन्तर में प्रवेश करती हैं . रसों में अनुरक्ती निरन्तर भीतर ही भीतर गहरा मोह संस्कार बनाती रहती हैं जो फिर उखाड़े नहीं उखड़ते . उसके लिये हमें सदा सतर्क रहना चाहिये . इन इंद्रियों से परिणित कार्यों से हम बच नहीं सकते . हर कोई , चाहें वह घर में रहे या जंगल में , वह इनसे काम तो लेगा ही . परन्तु यदि वह सतर्क रहे , जागरूक रहे , चौकीदार बन जाये , अपने ऊपर उपरामता का अंकुश लगा ले तो वह जीवन सिद्धि , जीवन मुक्ति की ओर चल निकलता है .

परमार्थ में साधक की सफलता के लिए परमात्मा के गुणों को अपनाना बहुत आवश्यक है . एक भी गुण जैसे दीनता, परोपकार , सरलता आदि पूरी तरह आ जाये तो परमार्थी साधक का कल्याण हो जायेगा . जो गुण परमात्मा के हैं , सत्संगी को उन गुणों को अपनाना होगा तथा उन्हें अपने व्यवहार में विकसित करना होगा . हमारा आदर्श , हमारा व्यवहार और हमारा जीवन भी उस अकाल पुरुष परमपिता परमेश्वर की तरह हो .चाहें साधक स्री हो या पुरुष , सबको ईश्वरमय बनना होगा.

गुरुदेव सब पर कृपा करें .

मन की अशान्ति का मूल कारण है- अहंकार

बहिन -भाईयों के पत्र आते रहते हैं , यहाँ आकर भी जब वे मिलते हैं तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी मानसिक अशान्ति की बात कहता है . बहुत कम लोग ऐसे हैं जो भीतर से सन्तुष्ट हों तृप्त हों , सुखी हों , आनंदमय हों . अन्यथा सब भाई -बहिन यही कहते हैं कि भीतर में अशान्ति है , शान्ति नहीं है , सुःख नहीं है . और विचित्र बात है कि अपनी अशान्ति का कारण दूसरों को बताते हैं . हम सबको सतर्क रहना चाहिये , यदि मन में सन्तोष नहीं , शान्ति नहीं , तृप्ति नहीं . अहंकार के कारण , क्रोध के कारण मन जलता रहता है तो परमात्मा तो बहुत दूर , हमको साधारण सुःख भी प्राप्त नहीं होगा . ईश्वर ने हमको सब कुछ दे रखा है . हमें सब प्रकार के सुःख मिले होते हैं , परन्तु तब भी अहंकार के कारण यह मन अपने आप को दुःखी करता रहता है और दोष देता रहता है दूसरे को . पति दोष देता है पत्नी को और पत्नि दोष देती है पति को . आज जितने भी आदमी , जितनी भी बहिने मिली हैं , सभी की यही समस्या है .

पूज्य गुरु महाराज (महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) फ़रमाया करते थे कि यदि परिवार का कोई सदस्य ग़लती करता है तो उस परिवार के मुखिया को सोचना चाहिये कि यह घटना क्यों घटी और सब घटनाओं की , सब बुराईयों की ज़िम्मेदारी परिवार के मुखिया को अपने ऊपर ले लेनी चाहिये . इसी तरह मैं आपका सेवक होते हुए , मेरी सोलह -सत्रह साल की सेवा के बाद भी , यदि अधिकांश लोगों के हृदय में शान्ति नहीं है तो उसके लिये मैं ही दोषी हूँ . इस समय तो मैं स्वयं दोषी हूँ . वह मेरी , मेरे चारित्र की , मेरी रहनी -सहनी , मेरी साधना की कमज़ोरी है कि मैं आपके परिवारों के व्यक्तियों के मन में शान्ति , प्रेम , आनन्द नहीं रख सकता . आप मुझे बुरा -भला कह सकते हैं. परन्तु कुछ न कुछ दोष तो आपका भी है . यह मानसिक अशान्ति क्यों है ? इसका मुख्य कारण हैं 'अहंकार ' .हममें ईश्वर व गुरु के प्रति श्रद्धा नहीं है .आप सांसारिक बातें मांगते हैं . ज़रूर माँगना चाहिये . मुझे बुरा नहीं लगता . उसके प्रति आपको सुझाब देना मेरा कर्तव्य है , मेरा दायित्व है , मेरा धर्म है . परन्तु अपने आप को बनाने के लिये जैसा आपसे कहा जाता है , आप उस हेतु प्रयास तो करें .

हमारी अशान्ति का मूल कारण हैं - अहंकार . कोई भी व्यक्ति अपने अहंकार को छोड़ने को तैयार नहीं है . पूज्य गुरु महाराज इतने समय तक बड़े प्रेम से हमारा पालन- पोषण करते रहे . हमें सुझाव देते रहे कि हमें प्रेम का , दीनता का जीवन जीना चाहिये , परन्तु हम हमेशा इसके विपरीत ही करते रहे हैं . इसका मुख्य कारण यही रहा है कि हमारे पिछले संस्कारों के कारण जो हमारा अहंकार है वो टूट नहीं रहा है . यदि अपने इष्टदेव के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धा हो , सच्चा प्रेम , सच्चा भाव , सच्चा भय हो , तो अहंकार कैसे रह सकता है / यह तो हमारे ईश्वर और गुरु के साथ सम्बन्ध नहीं है . अहंकार के कारण हम परिवार में भी अशान्ति पैदा कर लेते हैं . केवल अहंकार के कारण परिवार का प्रत्येक सदस्य यह सोचता है कि जो वह सोचता है वही परिवार का प्रत्येक सदस्य करे . प्रत्येक स्री यही सोचती है कि उसका पति और सास , ससुर , सन्तान आदि परिवार के जितने भी सदस्य हैं सब वैसा ही करें जैसा वह सोचती है . सब लोग यह क्यों नहीं सोचते कि उनका वास्तिवक धर्म क्या है , मर्यादा क्या है ? वो मर्यादा

के अनुसार क्यों नहीं चलते ? हम लोग अपनी संस्कृति का पालन क्यों नहीं करते ? पति को पति बनना चाहिये , स्री को स्री बनना चाहिये . प्रत्येक को अपने धर्म , अपनी मर्यादा के अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहिये . गुरु को तो छोड़िये , गुरु की बात तो आप मानते नहीं . गुरु या ईश्वर को आप नचाते हैं और जब तक वह नाचता रहता है , आपको अच्छा लगता है . और जब वह कोई सत्य बात आपके मुँह पर कह देता है तो आपको बड़ा बुरा लगता है . इसीलिये मैं कहता हूँ , सारा दोष मुझे अपने ऊपर लेना चाहिये

सत्संग में हम सम्मिलित हुये हैं , काहे के लिए ? इधर - उधर की चर्चा के लिए नहीं . हम सम्मिलित हुए हैं इसलिए कि प्रत्येक साधक के भीतर में सच्ची शान्ति आये . यह तभी आयेगी जब हम मर्यादा के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करें . प्रयास करें . पूज्य गुरुदेव के द्वारा बताए गये रास्ते पर चलने की कोशिश करें . ईंट का जबाब पत्थर से देंगे तो शान्ति नहीं आयेगी . चाहें व्यक्तिगत शान्ति हो चाहें सत्संग की शान्ति हो , एक ही बात है .

दूसरी बात यह है कि स्व -निरीक्षण करना चाहिये कि अशान्ति का कारण क्या है ?हमें बड़ी गंभीरता के साथ , सत्यता के साथ मनन करना चाहिये कि मुझे क्यों विचार आते रहते हैं ? . सारे दिन क्यों गन्दे -गन्दे विचार आते रहते हैं ?. संकल्प -विकल्पों में क्यों मैं सारे दिन फंसा रहता हूँ ? आप विचार करेंगे तो पायेंगे कि प्रत्येक व्यक्ति की दो -चार समस्याएँ होती हैं . उनको हल करने की कोशिश करनी चाहिये . अपने से हल नहीं होतीं तो किसी बड़े का सहारा लें . पति -पत्नि एक दूसरे का सहारा लें , परस्पर परामर्श करें व उनका हल ढूंढें . किसी आचार्य के पास जायें और उन्हें अपनी समस्या बतायें . उस समस्या का हल ढूंढ़ कर समस्या को भूल जायें . फिर संकल्प -बिकल्प के लिये मैटर बचता ही नहीं . फिर किस चीज़ के लिए आप संकल्प -बिकल्प उठायेंगे ? परिवार के प्रत्येक सदस्य , विशेषकर पति - पत्नि , को चाहिये कि वे अपना कर्म , अपना धर्म तथा अपना दायित्व पहिचानते हुए उसके अनुसार अपना आचार - व्यवहार बनायें . जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तो माता -पिता को उन्हें डाटना नहीं चहिये . कई बार माता - पिता केवल इसलिए डांटते हैं कि वे माता -पिता हैं . बच्चे भले ही सही बात करें , परन्तु माता -पिता अहंकार के कारण उनकी बात सुनते ही नहीं . यह बड़ी भूल है . बच्चों को मित्र बना लेना चाहिये . कभी परिवार में कोई कठिनाई आए तो बच्चों से भी परामर्श लेना चाहिये . बच्चों को इससे प्रेरणा मिलेगी . उनका उत्साह बढ़ेगा . इसी तरह पति - पत्नि का व्यवहार भी बड़ा मधुर होना चाहिये . उनका व्यवहार बच्चों के लिए प्रेरणादायक होता है . यदि पति -पत्नि ही आपस में लड़ते हैं तो बच्चों पर क्या प्रभाव पडेगा ? . इसलिए मेरा आपसे नम्र निवेदन है कि अपने हित के लिए अपने आप को बनाने का प्रयास करें .

अगले भण्डारे में जब आपसे भेंट हो तो यदि अधिकांश लोग जो मुझसे मिलने आयें वो कहें कि हम बड़े ही सुखी हैं , तो मेरे सुःख की सीमा नहीं रहेगी . आप को दुःखी देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है . आप कह जाते हैं , मैं सुन लेता हूँ . आपकी बातें मेरे मन में रहती हैं . मुझे दुःख होता है कि मेरे बार - बार कहने पर भी मेरी बात क्यों नहीं सुनी जाती ? जहाँ पति -पत्नि दोनों दीक्षित हैं , वहाँ ऐसी बातें हों तो बड़ा दुःख होता है .

सत्संग का प्रत्येक सदस्य इस संस्था का प्रतिनिधि है . आपके व्यवहार से दूसरे लोग प्रभावित हों ,यह आपका लक्ष्य होना चाहिये . प्रत्येक सत्संगी को संसार बड़ी गहराई से सिर से पांव तक देखता है कि इसमें क्या विशेषता है . इसने सत्संग में जाकर क्या सीखा , इसमें क्या परिवर्तन आया ? किसी सत्संगी को क्रोधित होते हुए देखकर दुनिया हँसती है कि यह कैसा सत्संगी है . ऐसा सत्संगी अपने आप को तो बदनाम करता ही है , संस्था तथा उसके मुखिया को भी बदनाम करता है .

सत्संग का वास्तविक लाभ क्या है ? इसी जीवन में आपको अपने स्वरूप में स्थित होना है , आत्मा का साक्षात्कार करना है , प्रभु -दर्शन करने हैं . यदि मन में अशान्ति रहेगी तो एक जन्म क्या कई जन्म लग जायेंगे प्रभु के दर्शन करने में . हम सब इस बात को समझते हैं परन्तु हमारे संस्कार जागृत हो उठते हैं और वो हमारे ज्ञान , हमारी विद्या को पीछे ढ़केल देते हैं .हमारा अहंकार जबर्दस्त है . अहंकार से क्रोध आता है , क्रोध से बुद्धि का विनाश होता है . आप इन कारणों को दूर करें . आप विश्वास कीजिये छः माह पश्चात आपको आत्मा की समीपता प्राप्त हो सकती है और निरन्तर सुहागन अवस्था प्राप्त हो सकती है . परमात्मा सब का पति है , उसका अस्तित्व हमेशा ही रहता है , वो सत -स्वरूप है . वो जिज्ञासु साधक बन सकता है जो निरन्तर प्रभु के चरणों में रहे . वहाँ वही साधक रह सकता है जिसके भीतर में सन्तोष है , शान्ति है , आनन्द है .

अशान्त मन प्रभु के चरणों में नहीं जा सकता . अपने सुःख के लिये प्रयास करें कि आपके भीतर में शान्ति हो . बिना शान्ति के हमें अपने सच्चे पति - परमात्मा की समीपता प्राप्त नहीं होगी . हम भले ही साधना न करें , कोई बात नहीं , परन्तु अपने जीवन को आदर्शमय बनायें . प्रभु से प्रेम इसलिए किया जाता है कि हमारा हृदय धीरे -धीरे निर्मल होता जाय . हमारे आवरण ख़त्म होते चलें जायें व उन पर प्रभु के गुण अंकित होते चले जायें .

मुझे आशा है व मैं आपसे अनुरोध भी करूंगा कि आप इस बात पर गंभीरता से सोचें और प्रयास भी करेंगे कि प्रतिक्षण अपने ऊपर अँकुश रखें. हमें अपनी आत्मा व गुरु का आश्रय लेकर हमारे भीतर में जो आसुरी वृत्ति है , अहँकारी वृत्ति या अन्य विकार हैं , उन सबका विनाश करना है , उन पर विजय पानी है .

गुरुदेव आपको शक्ति दें . मेरी आपसे प्रार्थना है कि जो व्यक्ति भी यहां आए उसके चहरे पर आत्मिक मुस्कान हो , सुःख व शान्ति उसके चहरे से टपकती हो . मुरझाया हुआ चेहरा नहीं होना चाहिये .हमें हँसते - खेलते खिले हुए पुष्पों की तरह बनना चाहिये . गंगा स्नान करने जायें और वहां शीतलता की अनुभूति न हो , उस शीतलता की प्रसादी हम घर लेकर न जायें और रोज़ सुबह उठकर उस गंगा जल की प्रसादी न लें तो दोष किसका है ?. दोष गंगा का नहीं स्वयम उस व्यक्ति का है .

मैं आपके प्रत्येक सुःख -दुःख में सम्मिलित हूँ , आपके साथ हूँ . परन्तु आप भी तो कोशिश करिए . ईश्वर से , गुरु से सच्चा प्रेम करें . उनके प्रति आपका सच्चा भाव होना चाहिये , भय यानी लज्जा होनी चाहिये . चाहें गुरुदेव इस समय प्रत्यक्ष में हैं या नहीं हैं , हमें समझना चाहिये कि वो हमारे साथ हैं . हम प्रत्येक क्षण , प्रत्येक विचार , प्रत्येक शब्द वही उठायें जिससे हमारे गुरूदेव , हमारे

परमात्मा, खुश हों . प्रेम व भय - इन दोंनों का अभ्यास करते रहना चाहिये . हमें ईश्वर से बिलकुल भी भय नहीं है , उसके प्रति भाव भी नहीं है . यहीं कारण है कि हम हाथ -पांव से भी ऐसे काम कर जाते हैं जो हमें नहीं करने चाहिये . विचारों से तो करते ही रहते हैं क्योंकि वहाँ कोई नियम लागू नहीं होता . कोई डर नहीं है . बुरे -भले विचार उठाते रहते हैं . वाणी से भी कई बार हम जाने -अनजाने में ऐसे शब्दों का प्रयोग कर जाते हैं जिससे दूसरे का दिल दुखे . यह महा पाप है .

हमारे व्यवहार में दीनता , मधुरता व प्रेम होना चहिये . जब तक हम इन गुणों को नहीं अपनायेंगे हमारे भीतर में शान्ति कैसे हो सकती है ? यह वैज्ञानिक नियम है कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर में तरंगे (vibrations) उठती रहती हैं . यदि हमारे भीतर में सच्चे भाव , अच्छे भाव होते हैं तो वायुमण्डल शुद्ध रहता है और यदि बुरे विचार उठते हैं तो हम वायुमण्डल दूषित कर देते हैं . जो कोई भी आपके समीप आयेगा उस पर भी आपके विचारों का प्रभाव पड़ेगा . इसीलिए आपके परिवारों में छोटी -छोटी बातों पर लड़ाई - झगड़ा हो जाता है . इसीलिये सावधान रहना चाहिये , ख़ास तौर पर पुराने अभ्यासियों को . यदि कोई बुरे विचार मन में आ भी रहे हैं तो घर से बाहर चले जाना चाहिये . हमारे विचारों का प्रभाव घर के प्रत्येक सदस्य पर पड़ता है . ऐसा जीवन जियें जो आनन्द -मय हो , कुशलमय हो . भीतर की कुशलता , भीतर का आनन्द ही आपको ईश्वर के समीप ले जायेगा . गुरुदेव भीतर की अशान्ति को फ़ारसी में फरमाया करते थे कि हम भीतर में मलाल रखते हैं . सांसारिक व्यक्ति को भले ही ये मलाल दुःख न दे परन्तु जो व्यक्ति इस रास्ते (आध्यात्म के रास्ते) पर आगया है यदि उसके हृदय में मलाल उत्पन्न हो जाता है , मन मुटाव उत्पन्न हो जाता है तो यह बड़ी हानिकारक व दुःख देने वाली हालत होती है . आदमी जलता है . अग्नि से जलकर इतना दुःख नहीं होता जितना दुःख मलाल के कारण होता है . पूज्य गुरु महाराज भी प्रयास करते रहे परन्तु अब स्थिति और बिगड़ी है , कुछ सुधरी नहीं . इसलिए हम सब लोग मिलकर कोशिश करें . यह सत्य है कि हम सब संसार में रहते हुई आन्तरिक शान्ति चाहते हैं . इसके लिए हमें कुछ थोड़ा सा बलिदान देना होगा -- अहंकार का बलिदान . हम स्वयं अपने अहंकार का बलिदान न देकर दोषी दूसरों को बनाते हैं . इससे हमारा अहंकार और पुष्ट होता है , अशान्ति और दृढ़ होती है .

ईश्वर हम पर कृपा करें

आत्मा और परमात्मा के बीच की दीवार कैसे हटाएँ ?

अभी भजन पढ़ा जा रहा था - " मैली चादर ओढ़ के कैसे द्वार तुम्हारे आऊँ " . यहीं मन की गुल्थि है जिसके कारण मन में चंचलता रहती है , अशान्ति रहती है , व्याकुलता रहती है . कोई भी व्यक्ति नहीं चाहता कि उसके भीतर अशान्ति हो , दुःख हो . वह यही चाहता है कि भीतर में सुःख ही सुःख हो , आनन्द ही आनन्द हो . हम संसार की वस्तुओं में , संसार के सम्बन्धों में देखते हैं , विचारों मे देखते हैं , दृश्यों में देखते हैं , पहाड़ों पर जाते हैं , इसलिए कि सुःख मिले . परन्तु हमें सुःख का नाम नहीं मिलता क्योंकि हमारे भीतर में जो चादर है वह बहुत ही मैली है . सँस्कारों के विकार दिखायी देते हैं , जिनके परिणाम स्वरूप हम भला बुरा व्यबहार करते हैं , अभिमान आता है , क्रोध और अहँकार आता है जिनके कारण हम अन्दर से दुःखी होते हैं . प्रत्येक व्यक्ति दुःखी है - सिर्फ एक मन के कारण . भीतर में एक गांठ बनी हुई है . आत्मा और परमात्मा के बीच में एक दीवार बनी हुई है .

महापुरुषों ने इस गांठ को सुलझाने के लिए भिन्न -भिन्न प्रकार के साधन व पद्धतियां बतलाई हैं . हमारा मन भी देखता रहता कि किस प्रकार से छुटकारा हो लेकिन यह एक ऐसे दलदल में फँसा हुआ है कि वहाँ से निकल नहीं पाता . रेशम के कीड़े की तरह अपने आप को बांधता रहता है , आख़िर में अपना ख़ात्मा कर लेता है . यहीं हालत हम लोगों की है .

संकल्प - बिकल्प में , दुःख - सुःख में , अशान्ति में रहते हुए , रोते झगड़ते हुए हमारा शरीर शान्त हो जाता है . फिर दूसरा शरीर मिलता है तब भी वही हाल होता है . तो मनुष्य को करना क्या है ? मन की इस गांठ को सुलझाना है .

इसके कई तरीके हैं . ज्ञान - मार्ग पर चलने वाले वेदान्तियों का रास्ता है कि मेरा सम्बन्ध क्या है शरीर के साथ , इस जड़ बुद्धि के साथ , इन संस्कारों के साथ . मैं तो स्वतंत्र हूँ . मैं आत्मा हूँ . शरीर , प्राण , मन , बुद्धि , आनन्द इन पांच आवरण से मेरा क्या सम्बन्ध है . " अहं ब्रह्मास्मि " मैं तो स्वतंत्र हूँ , पूर्ण ब्रह्म हूँ . तोतापुरी जी स्वामी रामकृष्ण परम हंस को ज्ञान की साधना सिखाने के लिए आए . स्वामी रामकृष्ण माँ काली के भक्त थे . भक्ति मन से होती है . यह नहीं कि यह ग़लत है , लेकिन अभी और विस्तार की आवश्यकता थी . एक छोटे शीशे के टुकड़े से तोतापुरी जी ने स्वामी जी ने बल पूर्वक स्पर्श करके अन्दर का आज्ञा चक्र खोला . इस शक्तिपात के साधन द्वारा स्वामी रामकृष्ण परम हंस की सुरत को शरीर और मन से उठाकर आत्मा में जोड़ दिया , उनको अनुभूति हो गयी .

हमको सचेत रहना चाहिये कि हम किसी भी प्रकार की साधना पद्धति अपनाये हुए हों , मन को छोड़ना नहीं है . मन में अप्रयास प्रसन्नता आनी चाहिये और वह तभी आयेगी जब उसमें शुभ सँस्कार उदय होंगे , सात्विक वृत्ति आयेगी, सत्यता की वृत्ति आयेगी . मन पूरी तरह से रंग जायेगा , पवित्र हो जायेगा . जब तक हमारा मन सत , चित्त , आनन्द नहीं बन जाता तब तक आप कितना ही परमात्मा का नाम लेते रहिए , उसके दर्शन नहीं हो सकते . नाम लेना या शुभ कर्म करने का फ़ायदा तो होता है . परन्तु जितनी हम आशा रखते हैं उतनी हमारी आशा पूरी नहीं होती . उसके लिए हम क्या करें ? प्रत्येक व्यक्ति अपनी बुद्धि , अपने संस्कारों , अपनी वृत्ति के अनुसार प्रसन्न होने के लिए कोशिश कर रहा है .

कौन चाहता है कि वह दुःखी हो ? परन्तु वह दुःखी है . सभी साधन सही हैं , कोई गलत नहीं है. हमें यत्न करके शिखर पर पहुँचना है . नीव यदि कच्ची रह जावेगी तो मनुष्य गिर जावेगा . इसलिए नीव को मज़बूत बनाना है . हम मन की तरफ़ तो ध्यान देते नहीं. हम चाहते हैं कि मन एकाग्र हो जाये . मन के एकाग्र होने का लाभ तब तक नहीं होगा जब तक भीतर में शांति नहीं है , आनन्द नहीं है . यह सुःख , शांति , आनन्द मन के बनाए बिना नहीं मिल सकता . परमात्मा कहीं दूर नहीं है . हमारे में प्रगति हुई है या नहीं ? यह मनुष्य स्वयं देख सकता है कि उसके अन्तर में पुष्प खिले हैं कि नहीं , प्रसन्नता खिलती है या नहीं और आपके व्यवहार में प्रेम विकसित होता है या नहीं . यदि ऐसा होता है तो और क्या चाहिये ? यह प्रगति की निशानी है . और आगे बढ़िए . इस माया के झंझट से कैसे छूटें ? इसका सरल उपाय जो संतों ने बताया है वह यह है कि हम ईश्वर से सीधा सम्बन्ध और प्रेम उत्पन्न करें , उससे हमारे प्रेम के सम्बन्ध निरन्तर बने रहें . एक क्षण भी न चूकें . हम हों और हमारा प्रीतम हो . हमें उसके स्वरूप और उसके गुणों की स्मृति हर पल बनी रहे . इसी को नाम लेना या सुमिरन कहते हैं . जो ऐसा नहीं कर सकते वे खोज करें ऐसे व्यक्ति की जो प्रभु में पूर्णतः लय हुआ हो , जिसमें प्रभु के सारे गुण हों और जो प्रेम स्वरूप हो . ऐसे व्यक्ति को गुरु कहते हैं . ऐसे व्यक्ति से प्रेम करने से मन की गुलथी , मन की समस्या हल हो सकती है . ऐसे व्यक्ति के पास श्रद्धा से बैठना चाहिये , उससे प्रेम करना चाहिये क्योंकि जो गुण ईश्वर में हैं वही उसके पास हैं . बल्कि उसमें एक विशेष वृत्ति है , एक शक्ति है . गुरु एक आतिशी शीशा है . उसका सम्बन्ध परमात्मा के साथ है. गुरु ईश्वर की कृपा खुद लेकर दूसरे को दे सकता है . ईश्वर की कृपा जो सीधी हो रही है वह सामान्य व्यक्ति में उतनी तेज़ी के साथ प्रवेश नहीं करती जितनी कि गुरु के शरीर से होकर जाने में . यह गुरु में विशेषता है कि यदि हम उसके पास श्रद्धा से बैठते हैं तो उस विशेष व्यक्तित्व में जो गुण हैं वे सारे हमारे अन्दर में आजायेंगे . उसके भीतर से तरंगें उठतीं हैं , रश्मियँ, किरणें निकलती हैं जैसे सूरज की किरणें निकलती हैं . इसी प्रकार उसके भीतर आत्मा , जो सूर्य की तरह प्रकाशित है , उसकी किरणें निकलती रहती हैं . उसके पास बैठने से हम उन किरणों का लाभ उठाते हैं . मौलना रूम कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति के पास हम एक क्षण भी बैठें वह कही बहतर है उससे कि आप कल्प भर यानी कई वर्ष तपस्या करें .

गुरु से प्रेम करने का मतलब है कि हम उसके जीवन का अनुकरण करें . सेवा करने का क्या मतलब है ? गुरु कुछ सेवा नहीं चाहता , हाथ -पांव की सेवा , सन्मान , पैसा , कुछ नहीं चाहता . वह यह चाहता है कि आप सुःख , शान्ति और आनन्द प्राप्त करें . वह आपसे कहता है कि आप देखिए कि आप में क्या कमी है . वह आपको बतलाता है कि यह करिए या वह यह बतलाता है कि उसने ईश्वर के साथ तदरूपता कैसे उत्पन्न की . वह अपने जीवन के उदाहरण देता है . आपको उन्हें मानना है . आपको उसके उपदेशों और आदेशों का पालन करना है . यही उसकी सेवा है . यही करने से हमारा उद्धार हो सकता है . यह सबसे सरल रास्ता है . यह रास्ता कोमल हृदय वालों के लिए है . हृदय में यदि ग्रहण शक्ति है तो जब वह व्यक्ति किसी महापुरुष के पास बैठेगा तो उसे बिना प्रयास ही प्रसादी मिल जायेगी . यही श्रद्धा है और श्रद्धा का ही दूसरा नाम भक्ति है . प्रभु हृदय में विराजते हैं , दिमाग या बुद्धि में नहीं

विराजते . इसीलिये यदि ईश्वर कृपा करें और आपको कोई महापुरुष मिल जायें तो आपको कुछ नहीं करना , केवल उनके पास बैठ जाय . हृदय में उनका आशीर्वाद लेना चाहिये . स्वामी रामकृष्ण परमहंस के पास बैठकर विवेकानन्द ने क्या साधन किया ? भगवान राम के पास लक्ष्मण ने बैठकर क्या साधन किया ? उनके पास बैठकर केवल उनके चरणों की तरफ़ देखते रहते थे . कौन सी विद्या उन्होंने भगवान राम से प्राप्त की ? केवल पास बैठकर हृदय से उनकी कृपा को ग्रहण करते रहे . इतिहास खोल कर देख लीजिए . जिसको भी यह ब्रह्म विद्या मिली है वह केवल हृदय द्वारा मिली है . ऐसे महापुरुष के पास प्रेम से , पूरी श्रद्धा के साथ बैठो , केवल बैठो . यही सच्चा सत्संग है . उनके पास बैठेंगे , उनका जीवन देखेंगे , जो वह करते हैं उससे प्रेरणा मिलेगी तो हमारा जीवन भी धीरे -धीरे वैसा बनता चलेगा . जो बरसों या युगों की तपस्या से प्राप्ती होती है , उससे कहीं अधिक लाभ इस प्रेम भक्ति से होता है और इसमें समय कम लगता है . शर्त यही है कि पूर्ण श्रद्धा के साथ उस महापुरुष के पास जायें . कुछ करने की ज़रूरत नहीं है .कोई साधन करने की ज़रूरत नहीं है , केवल यहीं साधन करना है . जितने साधन हम करते हैं इसलिए करते हैं कि मन काबू में आ जाय . गुरुदेव कह रहे हैं कि इसे प्यार की रस्सी से बांध देना चाहिये . जैसा मैंने अभी निवेदन किया कि ईश्वर कृपा से किसी महापुरुष , जिसको हम गुरु कहते हैं , जो पूरण प्रेम रूप है , ईश्वर रूप है , से भेंट हो जाए और उसकी कृपा से उसके चरणों में बैठने का अवसर मिल जाय ,तो यही साधना है . इसी से मन की ग्रंथि खुल जायेगी यांनी संस्कार , वृत्तियां आदि सब कुछ धीरे - धीरे ख़त्म हो जायेंगे , चादर हमारी बिलकुल सफ़ेद , साफ हो जायेगी .

तब हमारा यह मन अप्रयास ही स्थिर हो जायेगा. अब उसमें ईश्वर के, गुरु के गुण आगए हैं . मन स्थिर होता है तो आत्मा विकसित होती है , आत्मा परमात्मा में लय हो जाती है . बुल्लेशाह एक सूफ़ी सन्त हुए हैं . उनसे पूछा गया कि ईश्वर की प्राप्ती कैसे हो ? वे जाति के माली थे. उन्होंने कहा कि इसमें कौन सी कठिनाई है , पौधे को एक तरफ़ से हटाकर दूसरी तरफ़ लगा देना है , यानी मन को संसार से हटाकर परमात्मा के चरणों में लगा देना है , यही करना है . कहने में बहुत सरल है . हम और आप कर रहे हैं , मगर हो नहीं पा रहा है . उत्तम साधन यहीं है कि हम गुरु के चरणों का आश्रय लें . उनके आदेशों, उपदेशों पर मनन करके उसे अपने जीवन में उतारें और उनके पास बैठे रहें . अगर शारीरिक तौर पर उनके पास बैठने का अवसर मिले तो अच्छा है और यदि ऐसा अवसर न मिले तो ख़्याल से उनकी सेवा में बैठें . आप चाहें कितनी भी दूरी पर हों आपको इस सूक्ष्म सत्संग से लाभ होगा .

जब शुरु में हम गुरु की सेवा में जायेंगे तो यह मन अपनी वृत्ति के अनुसार चंचलता दिखायेगा. धीरे -धीरे जब हमारा प्रेम बढ़ता जायेगा , यानी हम गुरु के गुणों को धारण करते चले जायेंगे और गुरु की कृपा की रशिमयां अपने हृदय में बसाते चले जायेंगे , तब हमारा यह मन अपनी कूद - फाँद कम कर देगा और समय आयेगा जब यह शुद्ध और पवित्र होकर बिलकुल स्थिर हो जायेगा. तब ही आत्मा विकसित होती है . उससे पहले हम भले ही कह दें कि मैं शरीर नहीं , मन नहीं , बुद्धि नहीं , आनन्द नहीं , मैं तो ब्रह्म हूँ , लेकिन यदि हम मन को बिलकुल अकेला छोड़ देंगे , उसके लिए कोई उपाय नहीं करेंगे तो समय अधिक लगने की सम्भावना है . गुरु का सत्संग इसके लिए मददगार है . गुरु के सत्संग का

मतलब है कि उनके पास बैठें . ऐसे गुरु ज़्यादा नहीं बोलते हैं . मगर हमारी आदत पड़ी हुई है कानों के रस की . जब तक हम कोई प्रवचन न सुनें , हमें तस्सली नहीं होती . परन्तु जो लाभ मौन सत्संग से होता है , वह प्रवचनों द्वारा नहीं होता . जब- जब अवसर मिले शारीरिक तौर पर उनकी सेवा में बैठें और यदि वे हमसे दूर हों तो मन के द्वारा , विचार के द्वारा उनकी हज़ूरी , उनकी उपस्थिति का भान करें .

फासले से , दूरी से कोई अन्तर नहीं पड़ता . हमने खुद देखा है. हम गुरुदेव से कितनी ही दूर होते थे, वो जहाँ भी होते थे , हमें उनकी विशेष कृपा अनुभव होती थीं . गुरु जिसको प्यार करता है उसे छोड़ता नहीं है . हमने देखा हम ग़फ़लत कर लेते थे , भूल जाते थे और उस कृपा से वंचित हो जाते थे , परन्तु जैसे ही हम होश में आते थे तो देखते थे कि गुरु की कृपा बराबर मौज़ूद है . वास्तव में कुछ व्याक्तियों के लिए जिनको गुरु बनाना चाहता है , उनकी सेवा वह गुरु हर वक़्त स्वयँ करता है , उनकी पूजा करता है हर वक़्त . पूजा का मतलब यह है कि उनको ख़्याली तौर पर अपने पास रखता है और जो कुछ उसके पास है ख़्याली तौर पर उसे दे देता है . यह शक्तिपात का तरीक़ा है . गुरु को प्रतिक्षण उस शिष्य की स्मृति रहती है . यही लय अवस्था मानी गई है . एक लय यह होता है कि शिष्य गुरु में लय होता है और जिन पर विशेष कृपा होती है , गुरु उन शिष्यों में लय होता है . यह पूरण लय स्थिति है कि शिष्य गुरु में लय हो और गुरु शिष्य में लय हो . फिर दोनों में कोई अन्तर नहीं रहता.

सत्संग की साधना का स्वरुप

साधना में बैठते हुए हमें करना यह है कि प्रेम स्वरुप परमात्मा के चरणों में हम प्रेममय होकर ' मनसा वाचा कर्मणा ' स्थिर होकर बैठें. इसमें कोई विशेष कठिनाई नहीं है. संसार में बाकी जितनी पद्धतियां प्रभु प्राप्ति के लिए हैं, वे पद्धतियां बड़ी विस्तृत हैं. हम जितना विस्तार करते गए, परमार्थ को गूढ़ बनाते गए . साधारण व्यक्ति की समझ में नहीं आता कि वह क्या करे ? आपको बस करना यह है कि आप वैसे ही निश्चल रहें जैसे आप निंद्रा में सोते हैं . उस समय आप कुछ भी तो नहीं करते . यदि आपका शरीर शिथिल है , मन तनाव रहित है तो आप निंद्रा का आनंद लेते हैं.

इस प्रकार हमें जाग्रत अवस्था में ही सुषुप्ति की अवस्था में रहना है. हमें जाग्रत-सुषुप्ति को अपनाना है. इस प्रगाढ़ जाग्रत-सुषुप्ति में ही प्रभु की प्राप्ति होती है. जब तक हमारी जाग्रत -सुषुप्ति अवस्था नहीं होती तब तक हमारी परमात्मा के साथ तदरूपता नहीं होगी . हमें अपने को तनाव-मुक्त करना है. रात को देखिये , यदि मन में तनाव है तो आपको अच्छी नींद नहीं आएगी. जब आप शरीर ढीला छोड़ देते हैं तो निंद्रा देवी आपको घेर लेती हैं . जागने पर आपको प्रसन्नता की अनुभूति होती है.

इसी प्रकार प्रभु के चरणों में जाकर अपने बल का प्रयोग नहीं करें. शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक - इन तीनों में से किसी बल का प्रयोग न करें. केवल उसकी (प्रभु की, गुरु की) इच्छा पर छोड़ दें. जैसे जब हम किसी कलाकार के हाथ में लकड़ी या पत्थर दे देते हैं और वह कोई अवरोध नहीं करता, बोलता नहीं है तो बहुत ही सुन्दर तस्बीर या मूर्ती उसमें से निकलती है. इसी प्रकार से हम अपने आपको पूर्णतः उस प्रेमास्पद के चरणों में समर्पित कर दें . आप देखेंगे कि आपके भीतर में एक अजीब तरह की शांति और आनंद की अनुभूति कुछ समय बाद होने लगेगी .

प्रभु दयानिधि हैं . उनके गुणों का गान करें और मन ही मन प्रभु के गुणों पर विचार करें , उन्हें अपनाने का प्रयास करें. शरीर को ढीला छोड़ दीजिये . मन में यदि विचार हैं तो मन से कह दीजिये कि इन विचारों की गुनावन थोड़ी देर के लिए न करे. कोई तनाव न हो. हमारे और परमात्मा के बीच अहंकार की जो दीवार है उसे तोड़ दीजिये . अहंकार हमेशा विचारों के द्वारा काम करता है. हमारे विचार ही हमारी आत्मा और परमात्मा के बीच की दीवार है . हम अकारण ही संकल्प-विकल्प उठाते रहते हैं , समझते नहीं हैं तथा अपने ख्यालों को अधिक मज़बूत करते रहते हैं.

हमें अभ्यास करना है कि हमारे भीतर में विचार न उठें या कम से कम ही उठें. साधना यह करनी है कि हमारा मन हमारे अधीन हो जाए. परम-पिता परमात्मा ने हमें मन के रूप में बड़ा विचित्र उपकरण दिया है. हमें इसका सदुपयोग करना चाहिए . आवश्यकता हुई तो विचार उठा लिया , नहीं तो इस मन को शांत रखना चाहिए. जिस प्रकार से भगवान शिव की सेवा में उनका नन्दी बैल बैठा है, उतनी ही सरलता से हम मन रुपी नन्दी बैल को बैठाये रहें. जब भगवान को आवश्यकता होती है तो वे उस बैल की सवारी कर लेते हैं , नहीं तो वह उनकी सेवा में शांत बैठा रहता है.

मन का काम है कि यह अकारण ही कोई न कोई समस्या खड़ी कर लेता है. जो अवकाश - प्राप्त व्यक्ति हैं , जिनकी नौकरी समाप्त हो गयी है , पेंशन मिल रही है, बच्चे काम से लगे हैं, फिर भी वे चिंतित हैं. जैसा कि भगवान कृष्णा ने गीता में बताया है, जीने का तरीक़ा यह है कि अनासक्ति से कार्य करें. संसार के प्रति अपनी पकड़ को ढीला करें. जो अतीत में हो चुका है उसे हम क्यों पकड़ें, उसे भूल जाइये . माँ-बाप को बच्चों की चिंता होती है. यदि परमात्मा में विश्वास है तो कल के लिए चिंता क्यों ? यह हमारी भूल है. यह अहंकार है. यह हमारी नासमझी है. हमें ईश्वर का आश्रय लेना है. ईश्वर की गोद में बच्चे की तरह बैठना है. ईश्वर हमारा सच्चा पिता है . पिता के रहते हुई बच्चों को चिंता करने की क्या आवश्यकता ? यह जीने का तरीक़ा है. हमें वर्तमान में ही प्रभु को पाना है. यही आत्मिक उन्नति का समय है. इसलिए बाक़ी सबको छोड़कर, सभी समस्याओं को छोड़कर, हम प्रभु के चरणों का आश्रय वर्तमान में ही ले लें. यदि हमारी किसी से शत्रुता है तो हम उसे क्षमा कर दें. क्षमा परमात्मा का ही रूप है.

सत्संग में यदि आप परमात्मा की पूजा करना चाहते हैं तो आप को परमात्मा के गुणों की पूजा करनी चाहिए , जिसका मतलब है कि आपको परमात्मा के गुणों को सराहना है, उनको अपनाना है और उन्हें अपनाकर अपने व्यवहार में विकसित करना है, परमात्मा का गुण है क्षमा करना. उसी प्रकार से क्षमा करना आपका स्वभाव बन जाए . आपको दुनियां में कोई कितनी ही उत्तेजना दे , आपसे शत्रुता करे, उसे आप क्षमा कर दें. यदि सतसंगी यह कहता है कि उसने ऐसा किया, वैसा किया , तो सत्संगी और सामान्य व्यक्ति में क्या अन्तर है ? यदि आप अपने आप को सत्संगी समझते हैं तो आपको इन विचारों से ऊपर उठना पड़ेगा. आपके व्यवहार में एक सामान्य व्यक्ति के व्यवहार से अधिक नहीं तो कम से कम कुछ अन्तर तो होना ही चाहिए. आप कहते हैं कि वह मेरे साथ ऐसा व्यवहार करता है तो मैं भी वैसा व्यवहार उसके साथ क्यों न करूँ ? ऐसे शब्द सत्संगी भाइयों के मुँह से नहीं निकलने चाहिए

भगवान् महावीर के पास एक राजा गया और बोला कि " एक दूसरा राजा मुझसे ईर्ष्या करता है और मुझे परेशान करता है. उसके पास मुझसे कम धन है . वह मुझसे चाहता है कि मेरा धन भी उसे मिल जाए. " भगवान् महावीर ने कहा " इसमें क्या आपत्ति है तुम्हें. तुम सन्यासी बन जाओ और अपना धन उसे दे दो. उसकी संतुष्टि हो जायेगी. " ऐसा होना चाहिए एक सत्संगी का व्यवहार. सत्संगी को तो बलिदान देना ही पड़ेगा. यदि वह भी वही कार्य करता है जो एक सामान्य व्यक्ति करता है तो सत्संग का क्या उपयोग . हमें तितिक्षा अपनानी होगी.

वास्तविक लाभ तब जानना चाहिए कि जब हमारे भीतर में भी वे ही गुण समां जाएँ जो ईश्वर के होते हैं. ईश्वर के गुणों को सराहें और उन गुणों को अपनाने का प्रयास करें. गुरु-दर्शन या ईश्वर-दर्शन यही है कि ईश्वर के , गुरु के , जो गुण हैं वे सब हममें समां जाएँ. आत्मा या जीव तथा परमात्मा में इतना ही अन्तर है कि परमात्मा सागर है , जीव उसकी एक लहर या बूँद है. केवल मात्रा का अन्तर है. गुणों में अन्तर नहीं है. इस वक्त हो क्या रहा है ? विकारों के कारण हमारे गुण छिप गए हैं . हमारे गुणों का सूर्य अस्त हो चुका है. साधना यही करनी है कि जो गुण ईश्वर में हैं , साधक वही गुण सीख लें .

साधक अपने भीतर में उन गुणों का विकास करें. वह पुरातन विचारों से धीरे-धीरे मुक्त हों , शुद्ध हों और सद्‌गुणों , सद्‌विचारों को अपना कर अपने सब कार्य करें . धीरे-धीरे अपने मन को प्रभु के चरणों में लय करते चले जाएँ . इस प्रकार आगे चलकर हम जब चाहेंगे निर्विचार हो जाएंगे और जब हम चाहेंगे तब सन्सार के साथ व्यवहार कर लेंगें. कोशिश यह करनी है कि हम निर्विचार और निर्विकार हों.

इसलिए पूजा से पहले हम स्तुति करते हैं , भजन आदि द्‌वारा प्रार्थना करते हैं , परमात्मा के गुणों को याद करते हैं, उसके गुणों को सराहते हैं. उसके लिए वायुमंडल या वातावरण बना लिया जाता है. इस प्रकार से हमने परमात्मा की नज़दीकी प्राप्त कर ली . अब उससे प्रार्थना करें. हमें जो मांगना है, उससे मांगें. फिर उसकी प्रसादी लेने के लिए अपने आपको उसके प्रति समर्पण कर दें. उसकी कृपा की गंगा में स्नान करें, डुबकी लगाएं . यदि आप अपने मन को और दृढ करना चाहते हैं तो थोड़ा-थोड़ा अभ्यास भी करें आज्ञा-चक्र पर (या जैसा भी आपके गुरु ने आपको बताया हो) फिर प्रसाद अर्पण करें और प्रसाद प्राप्त करें.

प्रसाद चढाने और लेने का तरीक़ा यह है कि पहले प्रसाद को परम-पिता परमात्मा के चरणों में बड़ी दीनता से अर्पित करना चाहिए. प्रसाद को जब बांटा जाय , तब बाटने वाला अपने इष्टदेव में लय होकर प्रसाद बांटे. जो भी प्रसाद को ले वह अपने गुरुदेव, अपने इष्टदेव के ध्यान में लय होकर प्रसाद प्राप्त करे. ऐसे प्रसाद से रोगियों के रोग तक ठीक हो जाते हैं. परन्तु हम लोग हंसी मज़ाक में प्रसाद बांटते हैं और लेते हैं. इसलिए निवेदन है कि शांति पूर्वक प्रसाद प्राप्त करें. ऐसा न करने से प्रसाद की महत्ता घट जाती है.

बालक नामदेव जी ने प्रभु के चरणों में प्रसाद चढ़ाकर प्रार्थना की है कि " मेरे पिताजी से तो आप नित्य प्रसाद ले लेते हैं, मुझसे क्यों नहीं लेते? " वह प्रसाद लेने का प्रभु से हठ करते हैं और बच्चों की स्वाभाविक सरलता से प्रभु से कहते हैं कि " यदि आप सीधे तरीके से नहीं मानते तो मैं डंडा लिए आता हूँ. " भगवान तो सरलता और प्रेम के भूंखे हैं. नामदेव जी डंडा ले आये और प्रभु ने प्रकट होकर दूध पी लिया.

हमें प्रसाद अनुरोध से , दीनता से, बच्चों जैसी सरलता से ही समर्पित करना चाहिए. ऐसा करने पर वास्तव में परम पिता परमात्मा और हमारे पूर्वज सन्त हमारे प्रसाद को स्वीकार कर लेते हैं. हम जब प्रसाद लें तो अंदर से, शांति से लें. सत्संग में जब तक हम बैठें कम से कम तब तक तो नितांत शांत रहें ही. यहाँ ईश्वर की जो कृपा बरस रही है , हम उसका अनुभव करें और उसी भावना से अपने घर वापस लौटें. थोड़े देर के लिए ही सही, कृपा का अनुभव तो करें. बच्चे तो शोर मचाएंगे ही, उन्हें मचाने दें . परन्तु हम बड़े तो शांत रहें, इसका ध्यान अवश्य रखें. सब मिलकर ईश्वर से प्रार्थना करें , गुरुदेव से प्रार्थना करें कि " हे प्रभु ! हे गुरुदेव ! आप हमारी इस तुच्छ भेंट को स्वीकार करिये.

साधकों को अभ्यास करने के साथ-साथ मनन और अध्ययन भी करना चाहिए. अपने इष्टदेव के, गुरुदेव के प्रवचन पढ़ने चाहिए, थोड़ा पढ़िए , मनन अधिक करिये और देखिये कि उस प्रवचन के भाव क्या हैं.? जैसे अपने पढ़ा कि मौन रहना है - अब मनन करिये कि मौन क्या है , हम मौन क्यों रहें , इससे क्या लाभ होगा या क्या हानि हो सकती है ? जिस बात पर हम मनन करते हैं वह बात हमारे मन पर दृढ हो जाती है , हमारे चित्त पर अंकित हो जाती है और हमारा स्वभाव बन जाती है. आम तौर पर सत्संगी लोग मनन नहीं करते , किन्तु मनन करना चाहिए, सत्संग में सुन लिया और बाहर जाकर निकाल दिया ,इससे क्या लाभ ? कुछ लोग हैं जो नोट करते हैं पर उनकी नोट की कापियां भी अलमारी में पड़ी रहती हैं.

गुरु महाराज का, पूज्य लाला जी महाराज का , जो साहित्य है वही हमारे लिए गीता है, रामायण है . कबीर साहब, गुरु नानक देव जी की जो वाणी है, उन्हें भी हमें पढ़ना चाहिए. इन सब पर मनन करना चाहिए और उनकी गहराई पर जाना चाहिए . इनके शब्दों में जो गंगा छिपी है उसमें भीतर घुस कर स्नान करें. जैसे सागर में घुसकर मोती निकाले जाते हैं, वैसे ही हम अपने इष्टदेव के वचनों की गहराई में जाएँ . आप जितना इष्टदेव की वाणी पर मनन करेंगे , उतना ही आप उनके नज़दीक होते चले जायेंगे.

एक बात और है की हमारे मन में यह थोथा विचार है कि केवल आँखें बंद करके बैठने से ही लाभ होता है. यह ठीक है कि जैसे प्रातः स्नान करते हैं, शरीर साफ़ हो जाता है , स्फूर्ति आ जाती है, ताज़गी आ जाती है , इसी प्रकार प्रातःकाल स्नान करने के बाद कुछ समय ईश्वर का चिन्तन करने से, पूजा करने से, कुछ और ताज़गी आती है. परन्तु जिनको समय नहीं मिलता, जैसे स्त्रीयां हैं उन्हें समय नहीं मिलता तो वह बेचारी परेशान रहती हैं. उन्हें परेशांन रहने की कोई आवश्यकता नहीं है. सुबह से शाम तक जो भी कार्य हम करते हैं उन सभी को ईश्वर की पूजा का रूप दें , एक यज्ञ बना दें. ईश्वर से लौ लगाए रहें. वह जो आमतौर की पूजा की जाती है , उससे यह सौ गुनी अच्छी है.

प्रतिक्षण हम ईश्वर की याद में रहें. यहाँ तक कि कहीं लड़ाई -झगड़ा भी हो जाए तो भी ईश्वर की याद में रहें .यदि ईश्वर को याद रखोगे तो लड़ाई नहीं होगी, और यदि हुई भी तो समाप्त हो सकेगी. गुस्सा आ जाय, तो ईश्वर को याद करें. गुरु महाराज को हमेशा अपने सामने देखें. सबके साथ सुन्दर व्यवहार करें. हमारा जितना भी व्यवहार हो, सेवा का रूप लिए हो. हमारी सेवा प्रत्येक को आनंद देने वाली हो. हमारी पूजा दूसरे को प्रसन्नता देने वाली हो, शांति देने के लिए ही हो, किसी के शोषण के लिए न हो.

संक्षेप में, साधना का सफल रूप यही हो कि अपनी दिनचर्या को ही पूजा का रूप दे दीजिये, यज्ञ का , दान का रूप दे दीजिये. दान क्या देना है? सब के साथ मधुरता का व्यवहार करिये. मधुर बोलिये, प्रेम से बोलिये. प्रेम का व्यवहार करिये. जितनी आप सेवा करते हैं उसका मुनासिब पैसा तो लीजिये , किन्तु ज़्यादा नहीं. दफ्तर में जाते हैं , छः-सात घंटे काम करना है तो उस अवधि में काम करते हुए आपको होश नहीं रहना चाहिए. पूरा काम करना चाहिए. किन्तु आप अख़बार पढ़ते हैं, चाय पीते हैं ,

काम कम या नहीं करते . तो आपकी कमाई ईमानदारी की नहीं है. पवित्र नहीं कहलाएगी . इसलिए जो भी क्षेत्र आपकी रोज़ी का हो, चाहें दफ्तर में या दुकानदारी में - उसे शुद्ध भाव से पूजा समझकर करें. हमें हर एक काम ईश्वर की हज़ूरी और ईश्वर की प्रसन्नता के लिए , ईश्वर का ही काम समझ कर करना चाहिए.

हम बच्चों के साथ बैठें तो उन्हें ईश्वर की सन्तान समझकर ही उनके साथ खेलें या पूजा करें. पत्नी है तो वह पति को भगवान् विष्णु का रूप मानें और पति है तो वह पत्नी को लक्ष्मी रूप में रखें . हम सन्सार को प्रभु-मय समझकर ही प्रसन्नता से कार्य करें. पड़ोसियों की दीन-दुखियों की , जिनसे भी हम संपर्क में आएं उन सभी की ईश्वर की पूजा के रूप में सेवा करें. आपका ऐसा स्वभाव बन जाए. ऐसा होना चाहिए हमारी साधना का व्यावहारिक स्वरुप.

गुरुदेव आपका कल्याण करें

परमात्मा है उसकी अनुभूति बड़ी -- सरलता से हो सकती है .

परमपिता परमात्मा सर्वव्यापक है. वह कण - कण में है , पत्ते -पत्ते , डाली -डाली में है . हम सब एकत्र हुए हैं परमपिता परमात्मा की अनुभूति के लिए . सर्वव्यापकता का अर्थ है कि परमात्मा हमारे भीतर में भी है . फिर हमें उसकी अनुभूति क्यों नहीं होती ? इस सम्बन्ध में मैने प्रातः निवेदन किया था कि हमारा मन संकल्प-विकल्प उठाता रहता है . जितना हम अधिक बोलते हैं , जितना हम अधिक शब्दों का प्रयोग करते हैं , उतना ही हम देखते हैं कि प्रभु हमसे कहीं दूर हैं .

परमात्मा की कृपा प्रत्येक वस्तु पर , प्रत्येक व्यक्ति पर एक जैसी हो रही है . यह अवसर है कि हम परमपिता परमात्मा की उस कृपा वृष्टि का अनुभव करें . उस वृष्टि को सूफ़ियों में ' फैज़ ' कहते हैं . संतों ने उसे 'अमृत ' कहा है . अरविन्द जी ने इसे ' भगवत प्रसादी ' कहा है . इस प्रसादी की अनुभूति हमें क्यों नहीं होती ?

परमात्मा का न आदि है न अन्त है . उसका रूप क्या है ? पुष्प में जो सुगन्धि होती है , वह दीखती नहीं है परन्तु होती है. इसी प्रकार परमात्मा भी उस सुगन्धि की तरह प्रत्येक कण -कण में बसे हैं . उसका रूप शास्त्रों में , महापुरुषों ने , ऋषियों ने केवल एक ही शब्द में कहा है ' ओम ' या ' ओंकार '. अंग्रेजी में कहते हैं 'is ' यानी 'है' . परमात्मा है . इस is को ही मनुष्य रूप देने की कोशिश करता आया है . इसीलिये हमारे देश में तथा अन्य देशों में भी , मनुष्यों ने परमात्मा के विभिन्न रूप बना लिए हैं और हम उन रूपों की पूजा करते हैं .

स्वामी रामतीर्थ जी ने कहा है कि यह मन की पूजा है . मन जो विचार बना लेता है , जो धारणा बना लेता है , जो ध्यान बना लेता है , वह उसी की पूजा करता है . यह गलत नहीं है . भक्ति के उपासक कुछ न कुछ रूप बना लेते हैं . प्रेम व भक्ति से उसके गुण सराहते हैं .किसी रूप की पूजा करना या न करना , यह तर्क का विषय नहीं है . सभी ठीक हैं . सगुण की पूजा करके भी भक्तों ने भगवान के दर्शन किए हैं .सभी ठीक हैं . कोई ग़लत नहीं हैं . ग़लत हमारा मन है . इस मन को शान्त कर दो . जब तक यह मन शान्त नहीं होता तब तक प्रभु के निर्गुण , निराकार स्वरूप की अनुभूति नहीं कर सकता . अनुभूति तो तब हो जब परमात्मा कहीं दूर हो . परमात्मा तो आप में ही है . केवल इस मन को पास लाना है . कबीर साहब फरमाते हैं -

" जब तक मैं था हरि नहीं , अब हरि हैं मैं नाहिं .

प्रेम गली अति सांकरी या में दो न समाहिं ."

ईश्वर का दूसरा नाम है ' प्रेम ' . उसमें दूरी नहीं है , दूसरापन नहीं है . यह मन दूसरापन खड़ा कर देता है और यह मन ही जब तक शांत नहीं होता तब तक प्रभु की प्रेम गंगा , कृपा वृष्टि में बाधा डालता है . उस गंगा प्रवाह की अनुभूति नहीं होने देता . उस अनुभूति का कोई वर्णन नहीं कर सकता . परमात्मा का क्या वर्णन करें ? हजारों पुस्तकों में परमात्मा का वर्णन करने का प्रयास किया गया है , परन्तु सब अधूरे हैं . महापुरुषों ने केवल एक ही शब्द में वर्णन किया है " है ". इसी को हम ' शब्द ' कहते हैं , सत -चि त -आनन्द कहते हैं, जिसका कभी विनाश नहीं होता .

मनुष्य को परमात्मा ने अपने जैसा बनाया , उसको चेतना दी है , शुद्ध बुद्धि दी है . परन्तु तब भी यह परमात्मा की अनुभूति नहीं कर पाता . परमात्मा की कृपा वृष्टि , जो सब पर एक जैसी हो रही है , मनुष्य उसे भी ग्रहण नहीं कर पाता . मनुष्य को परमात्मा ने ग्रहण शक्ति का विशेष गुण दिया हैं जिसका प्रयोग वह अपने मन के द्वारा करता है . किन्तु हमारा मन भीतर में रुकावट डाल देता है जिसके कारण हम ईश्वर की अनुभूति नहीं कर पाते , ईश्वर के साथ तदरूप नहीं हो सकते . परमात्मा की जितनी भी जगहें - मन्दिर , मस्ज़िद , गुरुद्वारा -हैं वहाँ सब जगह उसकी कृपा एक जैसी पड़ रही है . मनुष्य ने ही अपने मन की दीवारें बना रखी हैं . हमारा यह मन ही हमें उस दया की फुहारों में स्नान नहीं करने देता . गुरुमुख रहता हुआ भी अछूता रहता है . आख़िर मनुष्य क्या करे ? बड़ा सरल तरीक़ा है , सीधा रास्ता है . परमात्मा है , अवश्य है और उसकी अनुभूति हो सकती है . प्रत्येक व्यक्ति , बच्चे से लेकर बूढ़े तक , सब कर सकते हैं . केवल अपने हृदय की खिड़की को खोल देना है . मकान की खिड़की बंद कर देते हैं तो सूर्यदेव का प्रकाश अन्दर नहीं आता . उस सूर्य में तो तेज़ है पर घर की खिड़कियां खुलने पर ही प्रकाश अन्दर आएगा . इसी तरह परमात्मा की अनुभूति के लिए केवल हृदय की खिड़की को खोलना है अर्थात समर्पण भाव से बैठना है , सरलता से बैठना है . किसी प्रकार की खोज नहीं करनी .जितनी इसमें हम खोज करते हैं उतने ही हम दूर होते जाते हैं .

जड़ समाधि नहीं बननी चाहिये . मैनें कई लोग देखे हैं जो दो -दो घंटे साधना करते हैं . उनमें तदरूपता भी आती है . परन्तु वे एक गलती कर जाते हैं . प्रभु के रूप का तो ख़्याल कर लिया परन्तु उसके गुण क्या - क्या हैं , प्रभु का स्वभाव , प्रभु का विरद क्या है - इस पर मनन नहीं करते . समाधि में इसका मनन ज़रूर करना चाहिये . इसके अभाव में जो समाधि होगी वह जड़ समाधि होगी . हमें चेतना समाधि का अनुभव करना है जिसमें ईश्वर के गुण हों . जो ईश्वर के गुण हों वो हमारे अन्दर भी विकसित होने चाहिये और वो गुण हमारे विचारों और हमारे व्यवहार द्वारा भी प्रगट होने चाहिये .

वास्तव में मनुष्य और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है . परमात्मा के गुणों का विकास निरन्तर होता रहता है . इसी तरह मनुष्य को भी अपने गुणों का निरन्तर विकास करना है . यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह प्रभु से बहुत दूर है . प्रभु के गुण क्या हैं ? वह सत -चि त -आनन्द है . आत्मा निरन्तर है , वह हमेशा एक सी है . उसका कभी विनाश नहीं होता . उसमें कभी परिवर्तन नहीं आता . उसका कोई जन्म नहीं , उसकी कभी मृत्यु नहीं . वह सत्य स्वरूप है . सत्य स्वरूप क्या है ? सत्य की अनुभूति ज्ञान नहीं है , यानी ज्ञान की शिखरता , उच्चता . पुस्तक का पढ़ लेना ज्ञान नहीं है . शास्त्र इसको अज्ञान समझते हैं . ज्ञान केवल आत्मा या परमात्मा का ज्ञान है . इनकी अनुभूति ज्ञान है .

उस सत्यता की अनुभूति निरन्तर होनी चाहिये . उस अनुभूति में विशेषता क्या है ? आनन्द , आनन्द , आनन्द . निरन्तर एक तरह का प्रवाह बहता है . उतार -चढ़ाव नहीं है . इसीलिये इसमें आनन्द है . जहाँ उतार -चढ़ाव है , उसमें सुःख भी है दुःख भी है . परन्तु आनन्द सुःख व दुःख से ऊपर है . आनन्द को महापुरुषों ने वर्णन करने की कोशिश की है . परन्तु बिना अनुभूति के वर्णन किया हुआ आनन्द तो अधूरा है .

मनुष्य को यहाँ परमात्मा ने इसलिए भेजा है कि उसका जो वास्तविक रूप- स्वरूप है उसकी वह अनुभूति करे . मनुष्य परमात्मा का लाड़ला बेटा है . परन्तु इसने रामराज को छोड़कर रागराज बना लिया है . इसके भीतर में अहंकार ने अपना ही साम्राज्य खड़ा कर लिया है . परिवार में , समाज में , देश में जितने भी लड़ाई - झगड़े हैं ,ये सब मन के बनाये हुए हैं . परमात्मा के प्रति मन में विश्वास नहीं है . इसलिए मनुष्य दुःखी है . दुःख का कर्ता कौन हैं ? परमात्मा या मनुष्य स्वयँ ? परमात्मा का कोई दोष नहीं है . वह हमें प्रकाश दे रहा है , शक्ति दे रहा है , हमारा मार्गदर्शन कर रहा है . परन्तु हमने अपनी अलग सल्तनत खड़ी कर रखी है . हम अहंकार को छोड़ते ही नहीं . आवश्यकता है 'अहं ' को हराने की . अहँकार के अनेकों रूप हैं . यह शरीर , इसके भीतर जो चार और शरीर हैं , हमारा मन , ये सब अहँकार के प्रतीक हैं . जहाँ ' मेरे -तेरे पन ' की आवाज़ होती है वहाँ अहंकार है . इस ' मैं ' को ख़त्म करना है . हमें अपने अहंकार को या हमारा मन जिस जगह फँसा हुआ है उसे वहाँ से हटाकर ईश्वर के चरणों में लगाना है .

अब मनुष्य बिचारा क्या करे ? मन अहँकार में , विषय भोगों में मस्त है जिनसे उपराम होना कोई साधारण बात नहीं है . हम जब तक इंद्रियों के विषयों से स्वतंत्र नहीं होते , मन में सँस्कारों की जो मलीनता है , उससे तृप्त नहीं होते , तब तक मन स्थिर नहीं होगा . मन धीरे -धीरे स्थिर हो जाता है , प्रयास करना चाहिये . एक समय ऐसा आयेगा कि हम भी प्रभु के प्रेम के अधिकारी हो जायेंगे . हमारी आत्मा भी परमात्मा से लौ लगा पायेगी .

संक्षेप में पुनः निवेदन करता हूँ कि परमात्मा की अनुभूति करने के लिए कोई विशेष तप करने की ज़रूरत नहीं है . संतों ने इसको बड़ा सरल बना दिया है . यदि गुरु पूर्ण है , उसकी आत्मा पूर्णतया परमात्मा में तदरूप रहती है . ऐसे व्यक्ति को हम ' संत ' कहते हैं . ऐसे व्यक्ति के पास बैठने से हमारा भी चित्त निर्मल हो जाता है . हमारे भीतर की शक्ति उभर आती है और हमारे भीतर में उमंग जागती है कि हम भी परमात्मा के दर्शन करें . यदि हम ऐसे महापुरुष की सेवा में जाते रहें , उनके पास बैठते रहें तो हम भी उन महापुरुष जैसे बन सकते हैं . ऐसे संत या गुरु मिल जाएँ तो उनसे दीक्षा में जो नाम मिलता है उसको संत 'सत्तनाम ' कहते हैं . सब नामों का सार परमात्मा के सत्तरूप का है व वही नाम है .

परन्तु मन इतना ढीठ है कि यदि सच्चा गुरु उसको मिल भी जाये तो भी उसकी अनुभूति उसको नहीं होती . वो संत की पहचान नहीं कर पाता . हमारे गुरुदेव कहा करते थे कि ऐसे सच्चे गुरु कोई हज़ार बरस में एक दो आते हैं . तब भी उस स्तर के गुरु न मिलें , उससे कम मिल जाते हैं . हमारे देश की धरती को प्रभु का वरदान है कि यहां सन्तो की कमी नहीं . तो जिन्होने कुछ प्रसादी प्राप्त की है ऐसे महापुरुषों की सेवा में रहकर , उनकी संगत में बैठकर उनके सत्संग द्वारा उनकी कृपा प्रसादी लेकर हम अपना उद्धार करें .

सूरज की किरणें सब पर पड़ रही हैं परन्तु यदि काला कपड़ा आतिशी शीशे के नीचे हो तो सूर्य की किरणें उस आतिशी शीशे पर अधिक शक्ति से पड़ेंगी और उस काले कपड़े को जला देंगी . यहीं स्थिति संत की होती है . परमपिता परमात्मा की शक्ति उस संवेदनशील संत के शरीर से होकर और अधिक शक्तिशाली हो जाती हैं . ऐसे संत के पास जो

भी व्यक्ति आता है चाहें वह कितना भी पापी , गुनहगार क्यों न हो , और वह संत से सम्पर्क रखता है तो उसके पाप भी धुल जायेंगे .

संत जो भी उपदेश देते हैं वे हमारा जीवन सफल बनाने के लिए होते हैं .हमें उनके आदेशों का पालन फ़ौरन बिना किसी सोच- विचार के करना चाहिये . जो गंभीर जिज्ञासु होते हैं वे अपना जीवन गुरु की आज्ञा पालन में लगाए रखते हैं जिसका उनको पूरा लाभ मिलता है . संत के भीतर से पवित्र किरणें निकलती हैं . जो व्यक्ति उनके सम्पर्क में आते हैं उनका उद्धार हो जाता है . इसलिए संतों के सत्संग का महत्व है .सत्संग में अपने हृदय की खिड़की खोल कर बैठना चाहिये . अपना कोई निजी अभ्यास नहीं करना चाहिये . परमात्मा के जिस रूप को आप मानते हैं उस रूप को सामने रख कर बैठना चाहिये . ख़्याल करें कि उसी स्वरूप से 'कृपा ' की किरणें आपके शरीर में , आपके मष्तिस्क में प्रवेश कर रही हैं

परमात्मा के अनेकों गुण हैं .परमात्मा प्रेम स्वरूप है . प्रेम में क्या होता है ? द्वेष नहीं , द्वन्द नहीं , अतीत नहीं , बुराई नहीं , भलाई नहीं . मुख्य गुण है कि दूसरे को अप्रयास ही सुःख पहुँचाया जाये . हम साधना भले ही करते हैं परन्तु दूसरे को दुःख पहुंचाकर हमें ख़ुशी होतीं है . तो ईश्वर का अनुभव हमें कैसे होगा? . ईश्वर के पास जो कुछ है वह कहता है कि ये सब कुछ तेरा है . हज़रत ईसा लिखते हैं कि परमात्मा मुझ से कहते हैं -- " ऐ बेटे ! यह संसार , इसकी तमाम वस्तुएँ और शक्तियाँ मेरी हैं , वे मुझसे ले ले , ये तेरी ही हैं . तू क्यों तड़फता है ? मैं साये की तरह प्रतिक्षण तेरे साथ हूं . तभी हज़रत ईसा कहते हैं कि " I and my father are one. " (मैं और मेरे पिता (परमात्मा) एक हैं). वह दीनता और सरलता के साथ कहते हैं " I am his son . " (मैं उनका पुत्र हूँ). उन्होंने परमात्मा का पुत्र बनकर भक्ति की .

हमारे यहाँ नौ प्रकार की भक्ति बताई गई है . पुत्र बनकर भक्ति करना ऊँची भक्ति है . ईश्वर में लय होकर भक्ति करना श्रेष्ठ भक्ति है . ईश्वर में लय नहीं हुए तो वह भक्ति साधारण भक्ति है . सूफ़ी लोग लय अवस्था , तदरूप अवस्था को कहते हैं . " मैं वही हूँ ." 'अहं ब्रह्मास्मि ' . आगे और चरण है . " मैं उसी से हूँ ." मैं उसी का पुत्र हूँ , मैं उसी का दास हूँ . यह सरलतम भक्ति है . हमारे यहाँ इसको कान्ता भाव भी कहते हैं . राधा जी भगवान में लय हो जाती हैं , कृष्ण रूप हो जाती हैं . राधा जी से कृष्ण भगवान का अनन्य भाव है . परन्तु यह भाव समझ में तब तक नहीं आ सकता जब तक हम तदरूप न हो जायें . तो मेरे कहने का मतलब यह था कि " परमात्मा है " और उसकी अनुभूति बड़ी सरलता से हो सकती हैं .

गुरूदेव आप सबका कल्याण करें .

स्वभाव बदलो , सत वृत्ति अपनाओ

प्रत्येक अभ्यासी जब आता है तो कहता है कि उसका मन उसके वश में नहीं है , मन में संकल्प -बिकल्प उठते रहते हैं , साधना में मन नहीं लगता . साधना करने के लिए उत्साह और उमंग नहीं है . ये बातें साधना में बाधा डालती हैं . पूज्य गुरु महाराज के प्रवचन या अन्य महापुरुषों की जीवनियां पढ़कर हम चाहते हैं कि जो आन्तरिक अवस्था उनकी थी , वह अवस्था थोड़े ही दिनों में हमारी भी हो जाय . चाह तो अच्छी है और परमपिता परमात्मा कृपा करें कि आप जैसा बनना चाहते हैं वैसा बन जायें . परन्तु वास्तविकता को भी देखना चाहिये . हमारे मन की हालत क्या है ? हमारे इस जीवन का विस्तार कैसे हुआ है ? कितने जन्म हमने इस जन्म से पूर्व लिए हैं , उन सबके संस्कार हमारे चित्त पर जमा हैं . इस जीवन में भी हम अपने विचारों द्वारा और अधिक संस्कार एकत्रित करते जा रहे हैं .

साधना यह है कि हमें अपने चित्त को निर्मल करना है , मलिन बर्तन को माझना है , साफ करना है . जितना कूड़ा -करकट हमारे भीतर में पड़ा है , वह सब हमें बाहर निकालनाहै . अपने भीतर के अवगुणों को देखकर हमें लज्जा आती है . समाज के सामने हम अपना कोई रूप व्यक्त करते हैं , मगर भीतर में हम अपने आप को छिपा नहीं सकते . जब तक हमारा चित्त निर्मल नहीं होगा हम सच्चे जिज्ञासु नहीं बनेंगें .

चित्त निर्मल करने के दो मुख्य साधन हैं . एक है - भक्ति द्वारा . किसी महापुरुष की सेवा में जाते रहें . उनसे स्नेह करें , उनके जीवन का अनुसरण करें , उनके आदेशों का पालन करें . अपने आप को उनके चरणों में समर्पित कर दें अर्थात जैसा वे चाहें हम वैसा करें . अपनी मनमानी नहीं करें . उनकी सेवा में बैठकर धीरे -धीरे आपका यह मन निर्मल होता चला जायेगा . हम सत्संग में भी जाते हैं , अपने पूज्य गुरुदेव के प्रवचन एवं पुस्तकें भी पढ़ते हैं . परन्तु व्यवहार में हम मनमानी करते हैं . हमारे स्वभाव में हठ है , ज़िद है , ईर्ष्या है , द्वेष है . सत्संग तो यह नहीं सिखाता . पूज्य गुरु महाराज तो यह नहीं सिखाते.

सत्संग का अर्थ है सत का संग , प्रेम का संग . प्रेम का हम संग करते हैं पर हमारे भीतर में ईर्ष्या है , द्वेष है , घृणा या अन्य दूसरी बुरी भावनायें हैं , जैसे किसी का शोषण करना , किसी को गुमराह करना , जीवन में धर्म को छोड़कर अधर्म की कमाई करना, इत्यादि अनेकों अवगुण हैं . जिस व्यक्ति ने अपने आप को प्रभु के चरणों में समर्पित कर दिया है यदि उसमें ये बातें होतीं हैं तो इसका मतलब है कि उसे अपने प्रीतम परमात्मा के प्रति श्रद्धा और विश्वास नहीं है . वह अपने इष्टदेव की बातों को मानने के लिए तैयार नहीं हैं और मनमानी करता है . हमारा यह मन साधना में बड़ी बाधा डालता है . इसी को माझना हैं . इसको वैसा बनाना है जैसे आपके गुरु हैं. इसको आत्म-मय बनाना है ,ईश्वर -मय बनाना है .

पूज्य लाला जी महाराज कहते थे कि लोग -बाग कई प्रकार के तप करते हैं . अग्नि के सामने बैठ जाते हैं , तेज़ धूप -गर्मी में बैठ जाते हैं . ऐसा तप करना तो सरल है परन्तु इस मन को क़ाबू में लाना बहुत कठिन है . तपस्या करनी पड़ती है, आहुति देनी पड़ती है .

ये साधारण बातें हैं कि काम क्रोधादिक पर क़ाबू पाओ . मन का जो अपना विशेष रूप है वह है 'अहंकार '. जो मैं सोचता हूँ वही ठीक है , जैसा मैं चाहता हूँ संसार वैसा ही करे . यदि ऐसा नहीं होता तो दुःख होता है . हम गुरुमत नहीं बनते . जैसा गुरु कहता है उसके अनुसार नहीं चलते . हम मनमत करते हैं . कौन करता है यह मनमत ?. यह हमारा अहंकार है . मुसलमान लोग इसको 'मूज़ी ' कहते हैं -- गिरा हुआ . इसका प्रभाव किसी के भीतर में अधिक किसी के भीतर में कम होता है , परन्तु कोई भी व्यक्ति इससे बचा नहीं है . हमसे अवगुण कराने वाला जो राजा है वह है अहंकार . मन को माझने का अर्थ है हमें इन सबसे मुक्त होना है . अवगुणों से मुक्त इस मन को गुरु प्रेम , ईश्वर प्रेम , अपने इष्टदेव के प्रेम से रंगना है . इस मन रूपी चुनरी को इतना रंगना हैं कि एक भी दाग न रहे . हमारे भीतर में प्रेम ही प्रेम हो , सरलता ही सरलता हो , दीनता ही दीनता हो .

भक्ति या ज्ञान , कोई भी साधना जो आपको अच्छी लगे उसे अपना लें . परन्तु गम्भीरता के साथ , व्याकुलता के साथ अपनायें क्योंकि यह मनुष्य शरीर बार -बार नहीं मिलेगा . हमारे खान -पान में , वाणी में , रहनी -सहनी में , कितनी ही कमज़ोरियाँ हैं , बड़े ही अवगुण हैं . पाँच -तत्वों की साधना करने से निवृति नहीं मिलेगी . पूज्य दादा गुरूदेव का आदेश है कि पहले उन बुराइयों को लो जो साधारण हैं , जिन्हें आप आसानी से छोड़ सकते हैं . उसमें सफलता मिल जाने पर हमें उत्साह मिलेगा . यदि आपने किसी कठिन बुराई को लिया छोड़ने के लिये और वह नहीं छूटी तो आपको बड़ी निराशा होगी और निराशा इस मार्ग में बड़ी बाधा डालती है . स्व -निरीक्षण करते रहें और किसी ऐसे महापुरुष के पास जाते रहें जिनके प्रति आपके मन में श्रद्धा है , जिनकी बात आप मानते हैं . उनका शारीरिक संग भी करें . वो सत -स्वरूप हैं , उनके श्री -चरणों में बैठें . उनके शरीर से सत की , पवित्रता की , निर्मलता की , प्रेम गंगा की शीतलता की , तरंगें , रशिमयां प्रतिक्षण निकलती रहती हैं . उनके पास बैठने से हम ईश्वर -प्रेम रूपी गंगा में स्नान करते हैं . हमारे अवगुण धीरे -धीरे धुलते चले जाते हैं . इसके साथ -साथ यदि हम उस महापुरुष के आदेशों का गंभीरता के साथ पालन भी करें तो हो सकता है कि प्रभु आप पर कृपा करें और आपके सब अवगुण धीरे -धीरे धुलते चले जायें और आपका बरतन , आपका चित्त मझ जाये , निर्मल हो जायें और उसमें ईश्वर का प्रेम भर कर आप ईश्वरमय हो जायें , आनन्द -रूप ,आत्म -रूप बन जायें. धर्म को अपनाना , आचरण को शुद्ध बनाना , सदविचार , सदव्यवहार , मधुर वाणी बोलना - ये साधना रूपी भवन की नींव हैं .जो कुछ आपके भीतर में होगा , वही बाहर भी व्यक्त होगा . यदि आपके भीतर में मधुरता होगी तो बाहर अप्रयास ही मधुरता व्यक्त होगी . भीतर में यदि कोई विकार है तो आप कितनी भी कोशिश कर लें वह आपकी वाणी और व्यवहार में व्यक्त हो ही जायेगा .

तो हमसे जो बुराइयाँ होती हैं , हमारे भीतर में जो कूड़ा -करकट , मलीनता भरी हुई है जिसके कारण हमें प्रभु के दर्शन नहीं होते , आत्मा की अनुभूति नहीं होती उन त्रुटियों के कारण हमारे विचार बनते हैं , हमारी वाणी निकलती हैं , हमारा पतन होता है . साधन यहीं है कि हमारे विचार शुद्ध हों , पवित्र हों , ईश्वरमय हों , हमारी वाणी मधुर हो , हमारा व्यवहार दूसरों को सुःख पहुँचाने वाला हो . प्रेम में आहुति दी जाती हैं , बलिदान दिया जाता है . अपने सुःख की चिन्ता न हो , दूसरों को सुःख , शान्ति , आनन्द मिले.

हमें इस चित्त को ख़ूब माझना है . यदि संस्कार रह जाते हैं तो दूसरा जन्म अवश्य होगा . इन संस्कारों के अनुसार ही दूसरा जन्म होगा . हम वही जायेंगे जहाँ हमारे संस्कार हमें ले जायेंगे . हमें अपना चित्त बिलकुल निर्मल करके यहाँ से जाना है . मोह नहीं , आत्मिक प्रेम उत्पन्न होना चाहिये जिसमें कोई विकार न हो , अतीत की स्मृति न हो . सादगी हो , ताज़गी हो , नवीनता हो . तामसिक तथा राजसिक वृत्ति का त्याग करके 'सत' वृत्ति को अपनाना चाहिये . हम सब तीन गुणों से जकड़े हुए हैं -- तमोगुण , रजोगुण और सतोगुण . यदि हमारे भीतर में तम है तो हमारी वृत्तियाँ तमोगुणी हैं जिससे हमें ख़ूब क्रोध आता है , बदले की भावना उठती हैं . राजसिक वृत्ति वाला कभी तो सबको प्रेम करता है , ख़ूब सेवा करता है और कभी मामूली सी बात पर झगड़ा कर लेता है यानी उसमें उतार - चढ़ाव आते हैं - नेकी की तरफ़ भी और बुराई की तरफ़ भी . अधिकांश लोग राजसिक वृत्ति के होते हैं . सतोगुणी वृत्ति का व्यक्ति शान्त रहता है . वह दूसरों को दुःख नहीं पहुँचाता . परन्तु ये तीनों गुण बन्धन हैं . स्वामी रामकृष्ण जी कहते हैं कि तमोगुण लोहे की जंजीर है , रजोगुण चाँदी की जंजीर है और सतोगुण सोने की जंजीर है परन्तु हैं तीनों ही बन्धन . तीनों गुण ख़त्म होते हैं आत्मा में जाकर ' सत्य ' में . भीतर भी सत्य है , बाहर भी सत्य है . सत्य का ही दूसरा नाम 'प्रेम ' है आत्मिक आनन्द है . बौद्ध मत में संस्कारों को खतम करना , विसर्जन करना ही 'मोक्ष ' या 'निर्वाण ' कहलाता हैं . हमें चाहिये कि हम तम और रज का त्याग करके सात्त्विक वृत्ति को अपनायें . जन्म मरण के चक्र से वही व्यक्ति बचेगा जो सत स्वरूप हो जायेगा , जहां आत्मा ही आत्मा है .

सत वृत्ति के साथ अन्तर में कोमलता तथा सरलता आनी चाहिये . साधना करते -करते यदि हमारे हृदय में कोमलता नहीं आती तो हम अभी राजसिक वृत्ति में हैं . अपने सुःख के लिए तो सभी इच्छुक होते हैं परन्तु दूसरे को सुःख , शान्ति , आनन्द और सन्तोष देना , तन , मन , धन से उसकी सेवा करना , जब हम ऐसा करते हैं तब हम कोमलता की ओर बढ़ते हैं . सारे संसार के लिए प्रार्थना करनी चाहिये -हे प्रभु ! सबक भला हो . आप बच्चे की तरह सरल बन जायें . सबसे स्नेह लें और सबको स्नेह दें . हम भीतर में कुछ हैं और बाहर में कुछ और हैं . यह सरलता नहीं बनावट है जो ख़त्म होनी चाहिये .

सत्य बोला जाय परन्तु उसके साथ कडवी वाणी न हो . उसमें मिठास होनी चाहिये . सत्य वाणी के साथ यदि कड़वा पन आता है तो सत्य का स्वरूप बिगड़ जाता है . आपके सत्य के कडवे पन से दूसरे को इतना दुःख पहुँचता हैं जिसका आपको अहसास नहीं होता . जब आप किसी से कठोर शब्द बोलते हैं तो आप ऐसा पाप करते हैं जैसे आपने किसी का बध कर दिया हो . राजसिक वृत्ति वाला व्यक्ति इन बातों की चिन्ता नहीं करता . दूसरों को दुःख देकर उसे आनन्द मिलता है . परन्तु सात्त्विक वृत्ति वाला व्यक्ति आप तो दुःख उठा लेता है , दूसरे को दुःख नहीं देता . हमारे शब्दों में मधुरता का संगीत होना चाहिये . यदि भीतर में मधुरता होगी तो आपको शान्ति का अनुभव होगा .

अपनी वाणी से किसी का दिल नहीं दुखाना चाहिये . यह बड़ा पाप है . कड़वे शब्दों में विष होता है . आपके शब्द दूसरों को और आपको भी जला देते हैं . सत्य में मधुरता छिपी है , अव्यक्त है जैसे परमपिता परमात्मा का स्वरूप

निर्गुण और निराकार है परन्तु उसमें सगुण और साकार रूप छिपे हैं . परमात्मा भी हमको स्नेह करता है , प्यार करता है , भले ही हम अनुभव न करें . अहंकार के कारण हम उस स्नेह को स्वीकार नहीं करते .

मनुष्य में दूसरे का दुःख देखकर अपने अन्तर में दुःख उत्पन्न हो और और यह भावना आये कि किसी तरह से उस दुःखी मनुष्य को उसके दुःख से निवृति दिलायी जाये . यह कोमलता हमारे स्वभाव में सहज हो जाय . अप्रयास ही हम दूसरों की सेवा करें . दूसरों को दुःखी देखकर उनके दुःख की निवृति करने का प्रयास करें . हम तो प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु ! सबका भला करो परन्तु यह प्रार्थना हम कभी नहीं करते कि सबका दुःख हमें दे दो और हमारा सुःख औरों को दे दो . कितना ऊँचा आचरण है कि सबके दुःख मुझे दे दो ? किसी को ख़ुश देखकर मन में ईर्ष्या न आये , मनुष्य मन में स्वयं हार्षित हो . यह हमारा स्वभाव बन जाय . यह ईर्ष्या कई रूप लेकर व्यक्त होती है . ख़ास तौर पर यदि हमारा कोई रिश्तेदार आगे बढ़ जाता है तो मन में ऐसी ईर्ष्या आती है . सच्चे जिज्ञासु के मन में ऐसी वृत्ति उत्पन्न नहीं होती . वह दूसरे के सुःख को देखकर सुखी होता है और दूसरे को दुःख में दुःखी होता है .

सबकी भलाई में मनुष्य अपनी भलाई समझे . यह गीता का , हमारे सारे साहित्य का, सार है . जो ज्ञान साधना करते हैं वे अपने आपको कहते हैं " मैं ब्रह्म हूं ." ब्रह्म में सारा विश्व समाया हुआ है. विश्व का सुःख -दुःख सब मेरा ही है . आत्म -स्थित होकर उनको दुःख -सुःख , गुण -अवगुण प्रभावित नहीं करते . वे सबको अपना ही समझते हैं . भक्त को कुछ प्रयास करना पड़ता है . साधना करनी पड़ती है . सच्चे जिज्ञासु को , जिसने सात्त्विक गुणों को अपना लिया है, उसकी वृत्ति बन जाती है कि वह दूसरों को सुःख पहुँचाने का प्रयास करे . वह दूसरे के दुःख में दुःखी , दूसरे के सुःख में हर्षित होता है . यह उसका स्वभाव बन जाता है .

गुरु महाराज का आदेश है कि सदगुणों को अपनाते चले जाईए एवं ईश्वर को भूलें नहीं . ईश्वर के स्वरूप को कभी न भूलें ओर ईश्वर के उन गुणों को भी न भूलें जिन्हें अपनाकर हमें उनके चरणों में जाना है . राम के स्वरूप को अपने रोम -रोम में समाहित कर लें तभी आप कह सकेंगे कि " तन में राम , मन में राम , रोम -रोम में रामहि राम ". जब ऐसी अवस्था परिपक्व हो जाती है तब परमार्थी वेग से परमार्थ की ओर बढ़ता है और कुछ ही समय में वह आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है . जब मलीनता ख़त्म हो जाती है , सदगुण आजाते हैं , सतवृत्ति बन जाती है , ईश्वर -प्रेम को आप धारण कर लेते हैं तब अधिक समय नहीं लगता . आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है , परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं .

तो साधना में सदगुणों को अपनायें . सदविचार , मधुर वाणी , सदव्यवहार हो और इनके साथ प्रभु की स्मृति बनी रहे . प्रभु के गुणों की स्मृति बार -बार करते रहें . परमात्मा के अनगिनत नाम हैं , अनगिनत गुण हैं . उसके जितने गुण आप याद करेंगे उतने ही वे गुण आपके भीतर अंकित होते चले जायेंगे . भक्ति में हम भाव बनाते हैं , पिता -पुत्र का ,

स्वामी -सेवक का , पति -पत्नी का , वात्सल्य का , प्रीतम -प्रेयसी का . जो भी भाव आपको अच्छा लगे , अपना लें . भक्ति में भगवन्त के चरणों में बैठकर उनकी सेवा करते हैं , उनका उपदेश सुनते हैं , उन पर मनन करते हैं . हमारे जीवन में मनन की कमी हैं . हमें मनन करना चाहिये और वैसा बनने का प्रयास करना चाहिये .

गुरुदेव आप सबको शक्ति दें कि जैसी गुरुदेव हमसे आशा रखते थे , हम वैसे बन जायें . हर माँ -बाप की एक ही इच्छा होती है कि उसकी संतान योग्य निकले , जो उसके नाम को बढ़ाये . सन्त इच्छामुक्त होते हैं . तब भी वह भी यहीं चाहते हैं . वह प्रेम द्वारा सेवा करके हम को स्वयं अपना जैसा बनाने का प्रयास करते हैं . हम भी उनमें श्रद्धा और विश्वास रख कर उनके जैसा बनने का प्रयास करें .

गुरुदेव आप सबका भला करें .

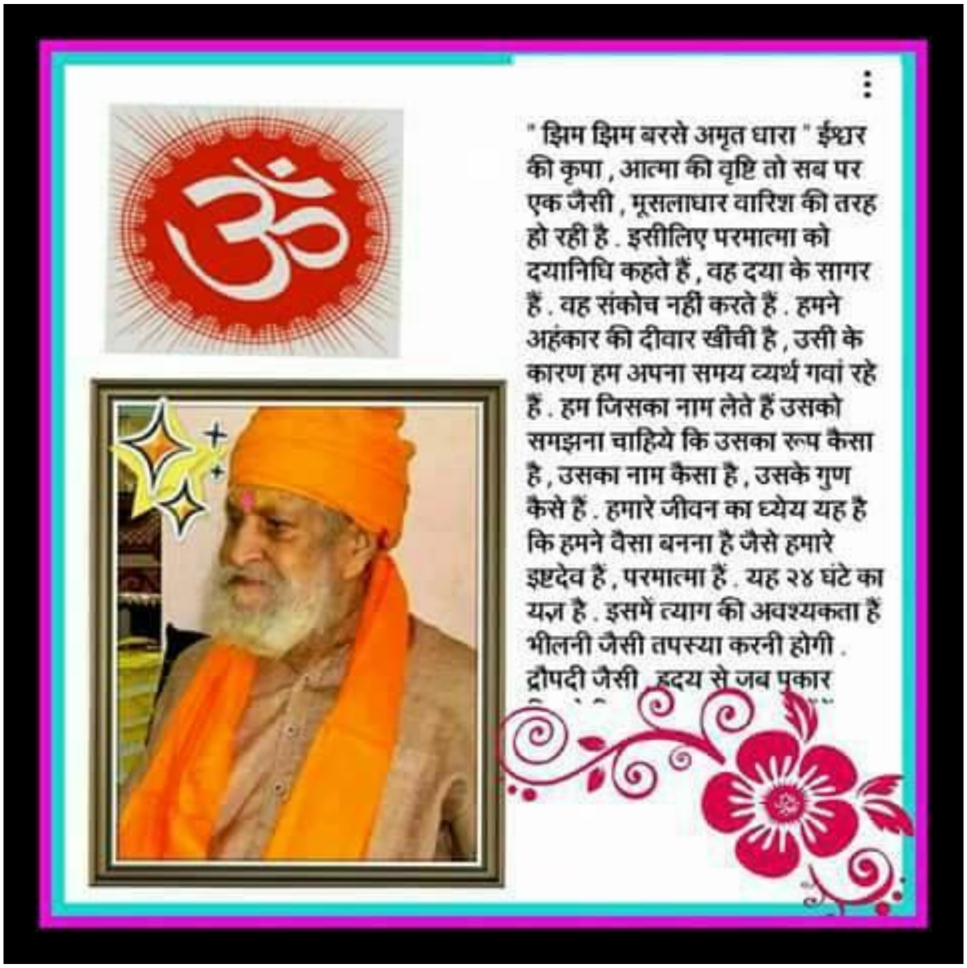

भगवान शिव जैसे शांत और शिवलिंग के समान स्थिर रहकर क्षमा आदि सद्‌गुण सीखें

" जब भी मन पर काल का प्रभाव हो , ख्यालात ख़राब हों , हालत गंभीर हो तो गुरु के सामने ज़रूर जाते रहो . अगर ऐसा न हो सके तो ख़त में अपनी हालत लिख कर भेज दो. "

यह ऊपर जो शब्द पूज्य गुरुदेव (महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी) ने हमारे हित के लिए कहे हैं उन पर हमें गंभीरता से विचार करना चाहिए. कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसकी दिनचर्या में शायद ही दिनभर में एक ऐसा पल आता होगा जब उनका मन शांत हो, अन्यथा यह मन अपने भीतर में हमेशा तर्क-वितर्क, लड़ाई-झगड़ा करता ही रहता है . किसी के प्रति निन्दा, किसी की चुगली, किसी से बदला लेना, किसी ने दस साल पहले कुछ कहा था या कल कुछ कहा था - बस चौबीसों घंटे जिज्ञासु इसी मन के फंदे में फंसा रहता है यह बीमारी सत्संगियों को भी घेरे रहती है. वास्तव में मनुष्य जितना निर्मल होता चला जाता है , वह उतना अधिक संवेदनशील (sensitive)) होता चला जाता है. .उसमें संवेदनशीलता अधिक आ जाती है. उसको तनिक सी कोई बात कह दो तो जैसे घास-फूंस में आग लग जाये तो कितनी जल्दी आग फैलती है - ऐसी स्थिति उस जिज्ञासु के भीतर में हो जाती है. हम सब लोग इस रोग से पीड़ित हैं ,कोई बचा हुआ नहीं है. हमारी आशा या इच्छा के विपरीत तनिक सी कोई बात या घटना हो जाए तो हमारे भीतर में अग्नि प्रज्वलित हो जाती है.

मैने देखा है और अपने प्रति भी मुझे कहने में संकोच नहीं है कि जितना व्यक्ति इस रास्ते में आगे बढ़ता है वह अधिक पागल हो जाता है क्योकि उसमें संवेदनशीलता अधिक आ जाती है. आप (सत्संगी)साधारण व्यक्ति नहीं हैं . आपका व्यवहार , आपके विचार और आपकी प्रतिक्रिया संसार से अलग प्रकार की होनी चाहिए . परन्तु ऐसा है नहीं. हम सब गृहस्थ हैं . कोई घर ऐसा नहीं जहाँ प्रतिकूल परिस्थितियां या घटनाएं न होती हों , प्रतिकूल बातें या आपकी आशा के विरुद्ध घटनाएं घटित न होती हों . कोई एक-आध ऐसा परिवार होगा , जहां सच्ची शांति होगी. जब सत्संगियों को क्रोध आता है तो उस समय तो भगवान ही उन पर कृपा करें .

" चालीस -पचास वर्ष हो गए सत्संग में आते हुए और हमारी और हमारे परिवार की परिस्थिति यही है - हमारा उद्धार कैसे होगा ? हम अपने आप को सत्संगी कैसे कह सकते हैं ? " -ऐसे भाव गुरुदेव ने कहीं सत्संग से बाहर जाकर नहीं सुने और यों ही नहीं बताये हैं . ये शब्द उन्होंने हम लोगों की पारिवारिक परिस्थितियों को, हमारे व्यवहार को देखकर कहे हैं . हम यदि उनके इन शब्दों का सम्मान करते हैं तो हृदय से क्षमा मांगिये. इससे परिवार की शांति तो गयी ही पर आपके अन्तर में कितनी हानि हुई - जिज्ञासु इसका अनुभव नहीं कर सकता. मैं कई दिन से सोच रहा था कि आखिर हम लोगों का क्या होगा ?

हमारे यहाँ की प्रथम साधना है कि प्रेम से, ज्ञान से, या सत्संग से, जैसे भी हो सके मन को निर्मल करें . यह नहीं समझें कि एक और रविवार को आ गए , घन्टा दो घंटे बैठ गए , प्रेम से एक-दो भजन भावुकता में भरकर पढ़ लिए और बस समझ लिया कि प्रेम हो गया हमारी वास्तविक साधना यह

है कि हम अपनी दैनिक जीवन-क्रिया को ही आत्ममय बनायें. हमें अपनी दैनिक दिनचर्या को बड़ी गंभीरता से ध्यान पूर्वक देखना चाहिए , उस पर मनन करना चाहिए , अपने चित्त की स्थिति का निरीक्षण करते रहना चाहिए. प्रातः दैनिक समाचार पत्र आता है , उसको पढ़ते ही हमारा मन चंचल हो जाता है , उसका प्रथम पृष्ठ देखते ही मन में उबाल और क्रोध आ जाता है. यह किसी साधना है. साधना के लिए पूज्य गुरुदेव उदाहरण दिया करते थे कि प्रत्येक सच्चे साधक को भगवान शिव की तरह शांत रहना चाहिए . भगवान शिव की जो समाधि है वह निरंतर स्थिर रहती है. उनके शरीर के बाहर कुछ भी हो रहा हो, भीतर में तो कुछ भी नहीं होता. वह सदा अप्रभावित रहते हैं . इसीलिए भगवान शिव को शिवलिंग का रूप दिया गया है. शिवलिंग को कुछ नहीं होता. हवा आ जाय, पानी पड़ जाय ,कुछ भी हो जाय , शिवलिंग पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है. प्रत्येक साधक को ऐसे ही भीतर में शिवलिंग की तरह स्थिर होना चाहिए. उसी स्थिति के आगे हम अपना सिर झुकाते हैं, उसे प्रतीक बनाकर पूजा करते हैं.

हमारे यहाँ की जो साधना या अभ्यास है उसको सहज मार्ग कहा गया है. भीतर से सन्यासी रहिये , त्यागी-वैरागी रहिये . भले ही हमारे यहाँ ऐसा कहा नहीं जाता कि आप विवेक वैराग्य से संसार त्याग कर सन्यासी हो जाएँ , परन्तु आंतरिक वैराग्य के बिना हमारा साधन नहीं होगा . संसार में जो कुछ हो रहा है, आप देख ही रहे हैं . हमारे यहाँ की, हमारे सत्संगियों की स्थिति भी संसार से कुछ भिन्न नहीं है. हम यदि ऐसी बुरी बातें करते हैं - जैसा कि हम और आप जानते हैं और देखते हैं कि कई भाई-बहिन कभी-कभी तो अपने परिवार में या बाहर और कहीं , आपस में बहुत बुरी तरह से लड़ते हैं. इससे उनका चित्त तो बहुत दुखी और मलीन होता ही है , उनके इस दुःख का प्रभाव हमारे गुरु पर भी पड़ता है . हमारा गुरु हम से कहीं अधिक संवेदनशील होता है. वह सोच में पड़ जाता है कि मेरे में ऐसी क्या कमी है कि मेरे भाई-बहिन ऐसा दुर्व्यवहार करते हैं ? . वह आपको कुछ नहीं कहेगा, यह उसका बड़प्पन है . कोई अन्य अध्यापक होगा तो वह आपको बाहर निकाल देगा . परन्तु गुरु ऐसा नहीं करता . वह अपने आप को दोषी मानता है, अपनी कमज़ोरियाँ देखता है , स्व-निरीक्षण करता है और बिना हमें बताये हुए व्रत रखता है और ईश्वर के चरणों में प्रार्थना करता है कि " प्रभु ! इन बहिन-भाइयों को सन्मति प्रदान करो."

जब तक हमारे भीतर में मन बैठा है और उसकी चंचलता जारी है , साधना में हमारी प्रगति नहीं होगी - विशेषकर तब जब हमारा मन राग और द्वेष की गहरायी में फंसा हुआ है . ऐसा साधक अपनी साधना में सफल नहीं होगा, ऐसा होना कठिन है. लोग कहते हैं कि मन की चंचलता ख़त्म नहीं होती . कई वर्ष हो गए हमारा मन स्थिर नहीं होता. गुरु डरता है कि यदि उनको सच्ची बात कह दें तो वे सत्संग छोड़ कर चले जायेंगे. वह उनकी गलतियों को छिपाता है . वास्तविकता यह है कि हमारे मन कि चंचलता का परित्याग तभी होगा जब हम अपने मन कि बुराईयों का सच्चाई से निरीक्षण करेंगे. स्व-निरीक्षण करके धीरे-धीरे एक-एक करके अपनी सब ग़लतियों का ख़त्म करेंगे. जब तक हमारे भीतर में चंचलता है , तब तक हमारी साधना में सफलता नहीं आएगी.

साधना में सफलता का अर्थ यह है कि हमारा मन निर्मल हो जाय, बुद्धि, विवेक और वैराग्यमय हो जाएँ , हमारे मन की चंचलता ख़त्म होकर हमारे भीतर में स्थिरता आ जाए . मन की स्थिरता आने

से शरीर में भी स्थिरता आ जाएगी. जैसे ही अन्तर में एकाग्रता की स्थिति बनती है , ये इन्द्रियाँ भी अपना कर्म करना छोड़ देती हैं , यानी हमारे मन , बुद्धि , चित्त, अहंकार सब शांत हो जाते हैं यह जो कुछ मैं कह रहा हूँ , ये स्वामी रामदास जी के शब्द हैं . अपनी तरफ से तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि क्षमा का स्वभाव बनायें. हमें कितनी ही उत्तेजना क्यूँ न मिले , हम भीतर में शांत रहें . जो हमारी बुराई करे , हमारे साथ दुर्व्यवहार करें , हम उनको भी क्षमा कर दें. यही हमारी नीति या हमारे स्वभाव का अंग (second nature) बन जाए.

हमारे देश की संस्कृति महान है . हम लोगों में अर्थात हम हिन्दुओं में बड़ी विशालता है कि जिस भी मज़हब के लोग अच्छी बात कहें , हम मान लेते हैं और उन बातों का अपने ग्रंथों में शामिल कर लेते हैं " फरीदा बुरे दा भला कर, गुस्सा मन न हंडाये " - फ़रीद जी गुरु नानक देव जी से १००-१५० साल पहले हुए हैं. फ़रीद जी की काफ़ी वाणी गुरु ग्रन्थ साहब में संकलित है और बड़ी श्रद्धा से पढ़ी जाती है. बाबा फ़रीद को पंजाबी भाषा का पिता माना जाता है . फरीद जी सूफी थे - आपकी साधना के बारे में सबको मालूम है . वह कहते हैं कि बुरे का भला करो. - जो आपके साथ बुराई करता है ,आप उसके साथ भलाई करो. आप अपने स्वभाव को बदलो , आप उसके साथ नेकी करो. ' गुस्सा मन न हंडाये ' यानि कि आपके भीतर में उसकी बुराई तनिक भी न रहे . आप इतना और करें कि उसके घर जाकर उसके पाँव दबाएँ. . हम और आप सब सोचें कि क्या हमने कभी ऐसी बात करी है .कि जो हमें गालियां दे , हमारा बुरा करना चाहे , हमारे मुंह पर या पीठ पर , और हम उसके घर जाकर उसके पाँव दबाएँ . ऐसा हम केवल दिखाबे के लिए ही नहीं करें बल्कि उसको ईश्वर का रूप समझ कर करें .

हज़रत ईसा ने भी हमें मुख्य साधन यही सिखाया है कि सबको क्षमा , स्नेह और सेवा करो. हमें शांति, सहनशीलता और क्षमा का अभ्यास करना चाहिए. हम शेख फ़रीद का उतना ही सम्मान करते हैं जितना गुरु नानक या कबीर का . यह हमारे देश का बड़प्पन है कि जो भी अच्छी बातें कहते हैं , चाहे वो हिन्दू हो, चाहे वो मुसलमान हों , चाहे सिख हो या ईसाई या कोई भी कहे हम उन सबको मान और आदर देते हैं . पर खेद है कि हम ऐसे उदार आचरण को अपना नहीं पाते. मेरा आपसे अनुरोध है कि हमें उत्तेजना या क्रोध की परिस्थितियों से बचना चाहिए और महापुरुषों के आदेशों के अनुसार अभ्यास करना चाहिए.

मन को स्थिर करने के लिए हमें विचारों से मुक्त होना पड़ेगा . हमें क्रोध और ईर्ष्या के विचार आते हैं क्योकि हमारे व्यवहार में कमी है. हमें अपने व्यवहार को विवेकमय और मधुर बनाना चाहिए. यदि हम अपनी साधना को सफल बनाना चाहते हैं तो हमें अपने व्यवहार की तरफ ध्यान देना ही होगा. गुरु महाराज कहा करते थे कि हमारा व्यवहार ही वास्तव में साधना रूप होना चाहिए. हमारे चौबीस घंटे जो विचार आते हैं वे साधना रूप हों . आप सबसे निवेदन है कि मन की चंचलता को छोड़िये . कम बोलिये, जितना आवश्यक हो उतना ही बोलिये , यदि अन्दर से चुप नहीं रह सकते तो कम-से-कम बाहर से तो मौन रहिये. गुस्सा नहीं करेंगे तो भीतर में भी मौन आने लगेगा. धीरे-धीरे अपने आप सहज मौन साध जायेगा . जब मन स्थिर हो जायेगा तो बुद्धि, चित्त, अहंकार भी स्थिर हो जायेंगे और आपको

स्वतः ही आपके भीतर में आत्मा का प्रकाश अनुभव होगा. इसलिए जब आपके व्यवहार में मधुरता और क्षमाशीलता आएगी तो आपको भीतर में शान्ति और आनंद का अनुभव होगा और भगवन शिव का रूप बनता जायेगा.

साधना में सफलता चाहते हैं तो भीतर में शिवलिंग जैसी अविचल स्थिरता अति आवश्यक है . जब तक स्थिरता नहीं आएगी आप सद्गुणों को अपनाएंगे कैसे ? और अंत में तो भगवान शिव की भांति गुणातीत हो जाना है . गुणों को भी छोड़ना अति कठिन है , पर आप घबराएं नहीं.
एक और सावधानी बरतनी है कि भीतर में कभी भी आप अपने को बहुत बुरा न समझें. हीन भावना नहीं आना चाहिए . यह बुराइयां तो बड़े-बड़े लोगों में भी आ जाती हैं. गुरु महाराज यहाँ तक कहते थे कि दस जन्मों में भी यदि संस्कार काटने में हमें सफलता मिल जाए तो हम बड़े भाग्यवान होंगे. वह कहा करते थे कि इस रास्ते पर ज़ल्दबाज़ी नहीं करनी चाहिए . पूज्य लालाजी महाराज का तो कहना था कि एक-एक त्रुटि को लेकर उसको सच्चाई के साथ छोड़ने का प्रयास करें. यदि एक जन्म भी लग जाए उस पर काबू पाने में तो आप अपने आपको भाग्यवान समझो. धीरे-धीरे चलिए , अपने दोषों को कम करते हुए, छोड़ते हुए तथा क्षमा आदि गुणों को अपनाकर बताया गया साधन करते रहिये. समय तो लगेगा ही .

हमें मनन करना चाहिए कि सब महापुरुष ऐसा क्यों कहते हैं कि यह जीवन बड़ा अमूल्य है. इन बातों के अर्थ क्या है ? केवल दार्शनिक बातों से ही हमें हमारा ध्येय प्राप्त नहीं होगा. साधक पहले अपने व्यवहारिक जीवन की छोटी-छोटी सरल , साधारण बातें तो सीख लें . इसीलिए बच्चों को भी यही सिखाया जाता है कि - कम बोलो, कम खाओ और कम सोओ. साधकों और हम बड़े-बूढ़ों को भी इन तीन बातों को अवश्य अपनाना चाहिए. कम खाने का मतलब यह है कि यदि आपका चार रोटी खाने से पेट भरता हो तो आप तीन रोटी ही खाएं. यदि आपको खाने का तरीक़ा ठीक आता है तो खूब चबा-चबा कर खायें. आपका पेट दो रोटी से ही भर जायेगा. वैसे बृद्ध या प्रौढ़ व्यक्ति को डेढ़ रोटी ही खाना चाहिए . हम सब लोग खाना बड़ी जल्दी-जल्दी खाते हैं और दो-चार गिलास पानी भी पी लेते हैं . यह बुरी आदत है. जहाँ कम खाना बताया गया है वहां यह भी है कि खाना धैर्य के साथ धीरे-धीरे खाना चाहिए.

दूसरी बात यह है कि क्षमा करने का अभ्यास करिये, यद्‌पि यह बड़ा कठिन है. आप बाहर के व्यक्ति को तो क्षमा कर देंगे किन्तु अपने परिवार के सदस्य को क्षमा नहीं करेंगे. पति-पत्नी एक दूसरे को आपस में क्षमा नहीं करते . जितना समीपता का सम्बन्ध ज़्यादा होता है उतनी ही ज़िद्द अधिक होती है. कम से कम परिवार में तो मधुरता पैदा होनी ही चाहिए .सत्संग में आये हैं तो हमारे चेहरे पर हरदम मुस्कान होनी ही चाहिए. हमारे विचारों का हमारे स्वास्थ्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है. आप जैसा विचार करेंगे वैसे आप बन जायेंगे (as you think so shall you be). अगर आप ऐसा जीवन जाएंगे तो आपका स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा .

एक बात और है - साधना के लिए अपना तन और मन दोनों को शुद्ध बनाइये . आप बेशक आधा घंटा भजन पढ़ते रहिये, जब तक कि आपका मन शुद्ध न हो . जब तक आपका मन स्थिर होकर साधना

के काबिल न हो जाए चुप करके बैठें और भजन पढ़ते जाएँ ऐसा भजन पढ़ना चाहिए जिससे आपका मन तुरंत द्रवित हो जाए. या कभी -कभी महापुरुषों की जीवनी और पवित्र ग्रन्थ आदि पढ़िए , फिर मौन साधना में बैठिये.

साधना के अंत में हम क्यों कहते हैं - " सब पर दया करो भगवान ". परन्तु यह हम अपने आप को सम्बोधित क्यों नहीं करते ? सब जानते हैं कि यह संसार कितना दुखी है . लोगों के दुखों की निवृति के लिए हम क्या करते हैं , क्या क़दम उठाते हैं ? हम रोज़ सत्संग में यह प्रार्थना पढ़ते हैं . ईश्वर तो दयानिधि है ही . उसकी दया से ही हमें यह मनुष्य चोला मिला है . वह तो दया का सागर है ही . वास्तव में ये शब्द हमारे लिए, हमारे मनन करने के लिए हैं कि हम कितनी दया करते हैं . इस प्रार्थना के द्वारा हमें दया और करुणा का गुण स्वयं भी अपनाना चाहिए .

वास्तविक पूजा है -- ईश्वर के गुणों को धारण करना, महापुरुषों के जीवन और व्यवहार का अनुसरण करना और अपने भीतर और बाहर शांति और आनंद का अनुभव करते हुए औरों की शांति और आनंद को भी बढ़ाते रहने का प्रयास करना .

गुरुदेव आप सब पर दया करें , शक्ति दें .

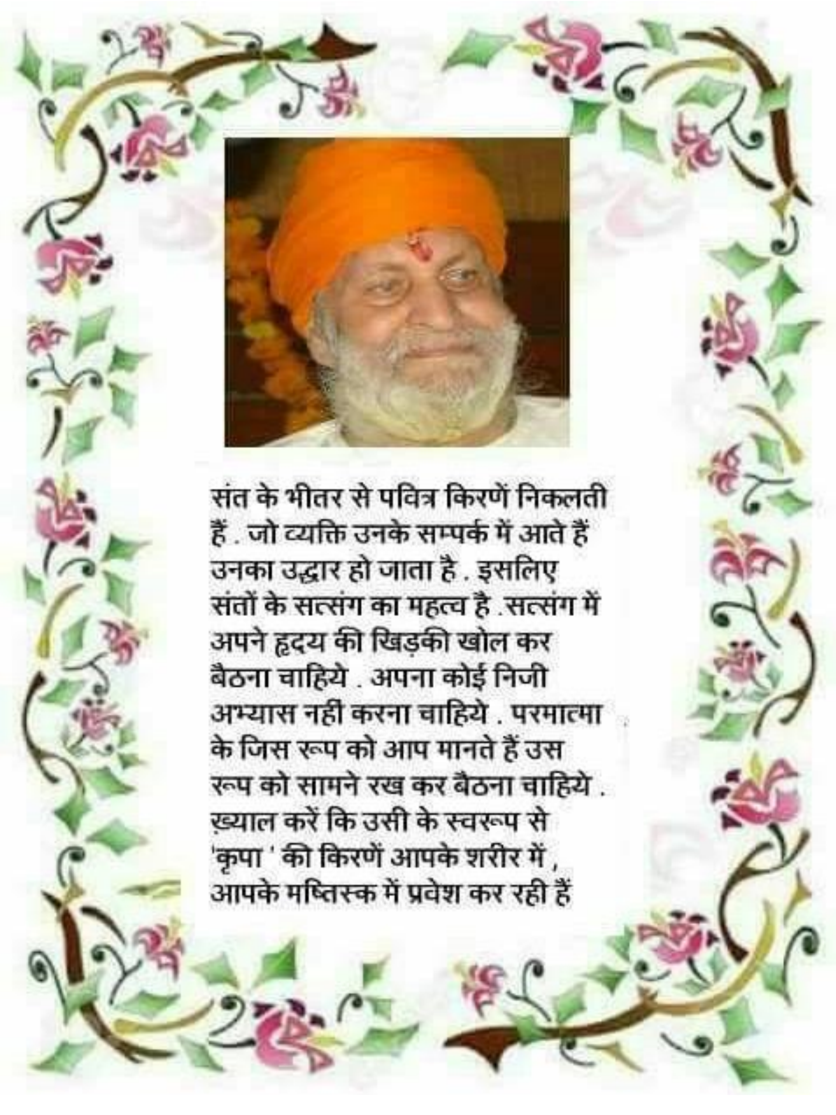

सच्चे जिज्ञासु बनो

गुरु और ईश्वर में कोई अन्तर नहीं है --यह सत्य है . परन्तु कैसा गुरु ? सब व्यक्ति जो अपने आपको गुरु कहते हैं वो वास्तव में गुरु नहीं हैं . गुरु कहलाने का अधिकार उसी को है जिसमें ईश्वर के सारे गुण हों . ऐसे गुरु का मिलना सौभाग्य की बात है , परन्तु गुरु भी योग्य शिष्यों को अपनाता है . कितने ही लोग आते हैं उसकी सेवा में , परन्तु सभी सेवक नहीं कहलाते . जिज्ञासु सब हैं , इच्छा है ईश्वर प्राप्ति की परन्तु सेवक बनना बड़ा कठिन है . सब कुछ गुरु के चरणों में न्यौछावर करना पड़ता है . शरीर , मन , धन , अपना अहंकार , मोह , सब कुछ गुरु के चरणों में अर्पण करना है . यह बड़ा कठिन कार्य है .

गुरु - शिष्य का सम्बन्ध बड़ा नाज़ुक़ है परन्तु यदि कोई सच्चा गुरु मिल जाय तो उसमें और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है . उसकी प्रसादी , उसकी प्रसन्नता तथा उसका एक शब्द कि ' तुम मुक्त हो गये ' इतना ही काफ़ी है , साधक को और कुछ करने की ज़रूरत नहीं . गुरु की वाणी में इतनी शक्ति होती है . तभी तो गुरु शब्द की बड़ी महत्ता कही गयी है . उसकी वाणी में सारे विश्व की शक्ति है . परन्तु सच्चा गुरु तो कोई हो ?

मेरे गुरु महाराज (परमसंत महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी) फरमाया करते थे कि हज़ार बारह सौ साल बाद कोई एक गुरु आया करता है . बाकी सब सेवक हैं , मॉनिटर हैं . रास्ता चल रहे हैं . अपना उद्धार करने का प्रयास कर रहे हैं और दूसरों की भी सेवा कर रहे हैं . गुरु महाराज के स्पष्ट शब्द हैं कि जितनी अधिक सेवा करोगे उतना अधिक लाभ होगा .

ऐसे ऊँचे विचार सुन कर घबराना नहीं चाहिये और जहाँ ऐसी वाणी सुनी , ऊँची ऊँची बातें सुनी , तुरन्त ही समर्पण नहीं कर देना चाहिये . जैसे गुरु का अधिकार है सेवक की परीक्षा लेने का वैसे ही जिज्ञासु को भी गुरु की परीक्षा लेने का अधिकार है . गुरु की जो व्याख्या शास्त्रों ने की है , परीक्षा करके देख लो कि वह व्यक्ति वैसा है या नहीं . उसकी रहनी -सहनी , करनी , कथनी की परीक्षा करिये . उसका आचरण कैसा है , यह देखिए . क्या वह पैसे का , सम्मान का भूखा तो नहीं है ? क्या उसके पास बैठने से हमारा मलिन मन पवित्रता की ओर बढ़ता है कि नहीं , मन एकाग्र होता है कि नहीं , उसके पास बैठ कर सुःख और शान्ति की अनुभूति होती है या नहीं ? गुरु महाराज कहा करते थे कि चाहे दो - तीन जन्म भी लग जायें , गुरु धारण में जल्दी नहीं करनी चाहिये . राधास्वामी मत के परमसंत श्रावण सिंह जी महाराज का भी यही कथन था . योग्य गुरु की उपलब्धि में ३-४ जन्म भी लग जायें तो समझना चाहिये किआपके भाग्य अच्छे हैं . उनका कहना था कि चार -पांच जन्म गुरु की सेवा में लग जाते हैं , गुरु की प्रसन्नता और उसकी प्रसादी प्राप्त करने में लग जाते हैं , तब कहीं जाकर वह आशय पूरा होता है जिस आशय के लिए हम गुरु करते हैं .

परन्तु समय बदल गया है . लोग -बाग आकर कहते हैं कि साहब ! हमें दीक्षा दे दीजिये . हम भी मज़बूर हो जाते हैं कि अच्छा भाई , दीक्षा ले लो . न तो मैं उतना उतरता हूं और न ही लेने वाले उतरते हैं . गुरु बहुत मिल जायेंगे परन्तु सच्चे शिष्य बहुत कम
मिलेंगें .गुरु महाराज कहा करते थे कि गुरु से सम्बन्ध आग से खेलने वाला है . तब भी यदि सौभाग्य से कोई योग्य गुरु मिल जाता है तो कुछ और करने की ज़रूरत नहीं है . उसी का ध्यान , उसी के चरणों का ध्यान , उसी की सेवा - इतना ही करना है . उसके उपदेशों का पालन करना ही उसकी सेवा हैं .

इतना ही करना है , और कुछ नही करना . घंटों बैठ कर समाधि लगाने की ज़रूरत नहीं . घर -बार छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं . वो गुरु तो पारस है , पारस से भी ज़्यादा शक्तिशाली . पारस तो केवल लोहे को ही सोना बना सकता है परन्तु सच्चा गुरु सच्चे भक्त को अपना जैसा बना देता है .उसमें ऐसे गुण हैं कि अधिकारी शिष्य जब उसकी सेवा में आता है तो वह बिना प्रयास ही उससे आत्मिक प्रसादी ले लेता है . परन्तु जो जिज्ञासु हो वो सच्चा जिज्ञासु हो , उसके हृदय की खिड़की खुली हो . ऐसा नहीं कि वह तर्क बुद्धि वाला हो . गुरु की यह बात तो अच्छी नहीं लगी , यह बात तो ऐसी है , वैसी है -- मारे गये . अर्जून शास्त्रज्ञ था , पढ़ा -लिखा विद्वान था और प्रभु की संगति थी . तब भी देखिये भगवान कृष्ण को कितना समय लगा अर्जुन को उस स्थिति में लाने के लिये , जब वह पूर्ण समर्पण कर सका . समर्पण करना बच्चों का खेल नहीं है . जो व्यक्ति अपने आप को पूरी तरह से अपने गुरु , अपने इष्टदेव , के प्रति समर्पण कर देता है उसमें ईश्वर कृपा तुरन्त प्रवेश कर जाती है . एक क्षण लगता है . परन्तु ऐसा समर्पण होता नहीं है . सच्चा सेवक और सच्चा गुरु बहुत कम मिलते हैं .

तो सिर की बाज़ी लगानी है इस रास्ते में . कुछ माँगना नहीं है . क्या बच्चा माँ से कुछ माँगता है ? यह प्रभु का , गुरु का , विरद है कि अपने सच्चे सेवक की देख -भाल करे , उसकी सब तरह से रक्षा करे . सेवक तो सब कुछ अर्पण करके निर्भय हो जाता है , निश्चिन्त हो जाता है , कोई चिन्ता नहीं रहती . हम माँगे माँगते हैं कि हमारा यह काम हो जाय , वह काम हो जाय . ठीक है , गुरु बाप है , माँगना बुरी बात नहीं है , माँगना चाहिये परन्तु कभी - कभी . माँगने की चीज़ , गुरु महाराज कहा करते थे , ईश्वर का प्रेम मांगों . हम ईश्वर का प्रेम नहीं माँगते , तो क्या आपका दोष नहीं है ? हमने भी समय व्यर्थ गँवाया है . हम भी पूर्ण शिष्य नहीं बन सके . कुछ लोग पुराने बैठे हैं . गुरु महाराज ने शरीर छोड़ने से करीब दो साल पहले कहा था कि जैसा मैं बनाना चाहता था , एक भी व्यक्ति नहीं बन सका . यह उनके अन्तिम समय का खेद था . हमारा दोष है , हमारी कमी है . उनके भण्डार में कोई कमी नहीं थी . कमी हमारे अन्दर है . हम माया में , वासनाओं में फँसे हुए हैं , सम्मान के भूखे थे , जो भी सांसारिक बातें होती हैं उनमें फँसे थे .

कबीर साहब कहते हैं कि गुरु और गोविन्द दोनों खड़े हैं , मैं किसके पाँव लागूं . स्वयँ ही उत्तर देते हैं कि गुरु के . क्यों ? क्योंकि गुरु ने ही हमें ईश्वर से मिला दिया है . सब शास्त्र , सब महापुरुष गुरु को ही अधिक महत्व देते हैं . इसलिए यह कहना गलत नहीं है कि गुरु और परमेश्वर एक ही हैं . पर होना चाहिये वास्तव में गुरु .

गुरु पूर्ण समर्थ हैं परंतु वह सामान्य जीवन जीकर व्यक्तियों को अपने जीवन से उदाहरण देता है , उन्हें शिक्षा देता है कि संसार में रहकर कैसा जीवन जिया जाय .

हमारे यहाँ सिखों में जब प्रार्थना होती है तो गुरु गोविन्द सिंह जी को याद किया जाता है तो पाँच प्यारों को भी याद किया जाता है जो गुरु के कहने पर देश के लिए स्वयं का बलिदान देने को तैय्यार हो गये . गुरु ने उन पाँच व्यक्तियों से स्वयं दीक्षा ली . अपने शिष्यों को अपना गुरु बना दिया. उनको अमर कर दिया . गुरु और शिष्य का यह जो सम्बन्ध है शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता . भगवान कृष्ण जैसे गुरु हों और अर्जुन जैसे शिष्य हों .

परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि आप सबको कोई ऐसा गुरु मिले जिसके केवल 'तथास्तु ' कहने मात्र से आपका उद्धार हो जाय . हमें तब तक ईश्वर से प्रार्थना करते रहना चाहिये , भिक्षा मांगते रहना चाहिये , अपने जीवन को स्वच्छ करते रहना चाहिये .

" गुरु , गुरु , गुरु कर मन मोर , गुरु बिना कछु नाहीं होर ."

हमारे और साधारण व्यक्ति जो गुरु कहलाते हैं , यह उनके लिए नहीं है . ईश्वर का नाम लेना या गुरु का नाम लेना एक ही बात हैं . ईश्वर ही गुरु है और गुरु ही ईश्वर है . भगवान ने गीता में कहा है , ईश्वर स्वयं ही गुरु रूप धारण करके आते हैं . ऐसे गुरु की जब हम पूजा करते हैं तो हम ईश्वर की ही पूजा करते हैं . हम और आप रास्ते के पथिक हैं . एक दूसरे का आश्रय लेकर चल रहे हैं . हो सकता है कि वह क्षण आये जब कोई सच्चा गुरु आकर हम - आप सबका उद्धार करे .

थियोसोफिकल सोसाइटी में सात प्रकार की दीक्षा होती है . अन्तिम दीक्षा के समय भगवान बुद्ध स्वयं प्रगट होते हैं शरीर रूप में . उनको स्थान का भी पता है . उनकी जो अन्तिम दीक्षा है बहुत मुश्किल से होती है . एक या दो जन्म में नहीं होती . कोई भाग्यशाली व्यक्ति होता है जिसको अन्तिम दीक्षा का प्रसाद मिलता है . ये गलत नहीं हैं . वो परमात्मा ही उस गुरु रूप में आता है . भगवान बुद्ध भी परमात्मा का रूप हैं . सच्चा गुरु आता है और वह अपना ईश्वरत्व सच्चे जिज्ञासु को दे देता है . परन्तु जब तक ऐसा गुरु न आये , रास्ता चलते रहना चाहिये , धर्म का जीवन व्यतीत करना चाहिये , प्रभु के चरणों में रोना चाहिये और सांसारिक गुरु से मदद लेनी चाहिये .

जिज्ञासु के भीतर में कितनी तड़प है -- उसका महत्व है . गुरु मिल जाता है . ईश्वर गुरु रूप होकर आ जाता है . परन्तु वह इस प्रतीक्षा में रहता है कि हमारे भीतर में सच्ची जिज्ञासा कब उत्पन्न होती है , हमारा मोह कब टूटता है . हम अहंकार को कब त्यागते हैं ? यह बहुत कठिन है . मोह और अहंकार का त्याग करना बहुत कठिन है . हम सब इंद्रियों के सुखों का त्याग कर सकते हैं , परन्तु मोह और अहंकार का त्याग करना बहुत ही कठिन है .

तो सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न करें . ईश्वर की कृपा गुरु रूप में अवश्य होती है . यह प्रभु का विरद है , प्रकृति का नियम है , सत्यता है , आज तक होता रहा है और आगे भी होता रहेगा . इसलिए जिसके हृदय में सच्ची जिज्ञासा है उसे घबराना नहीं चाहिये . वो पत्थर को भी गुरु बना लेगा तो भी उसको दर्शन होंगे . आध्यात्मिकता में कोई धर्म

नहीं देखा जाता कि कौन जिज्ञासु हिन्दू है , मुसलमान है या सिख है . मुसलमानों का उद्धार हुआ है हिन्दू संतों के हाथों में , हिंदुओं का उद्धार हुआ है मुस्लिम फ़क़ीरों के हाथों में . जो सच्चे सन्त हैं , सच्चे फ़क़ीर हैं , वे इन बातों की तरफ़ नहीं देखते . आत्मा का कोई धर्म नहीं है . वहाँ कोई सम्प्रदाय नहीं है , वहां कोई दीवारें नहीं हैं . सत्यता इन सब छोटी - छोटी बातों से ऊँची है . ये सब बातें भगवान राम ने , भगवान कृष्ण ने हमको सिखलाई हैं परन्तु हम सब कुछ भूल गये हैं .

भगवान जाते हैं , ऋषि मिलते हैं और कहते हैं कि भगवान सरोवर में मलीनता है , स्वच्छता नहीं है , यदि आप उसमें स्नान करने की कृपा करें तो यह साफ़ , निर्मल हो जायेगा . भगवान उसमें स्नान करते हैं , परन्तु सरोवर साफ़ नहीं होता . तो भगवन कहते हैं कि शिवरी जो भीलनी है उससे जाकर कहिये , उसके स्नान करने से तालाब साफ़ होगा . वे ऋषि लोग बड़े अहंकार में थे कि हम तो बड़ी ऊंची जाति के हैं और हमारी बड़ी तपस्या है . अब हम उस शूद्र स्त्री से जाकर कहें कि वो सरोवर में स्नान करे . मरता क्या न करता , मज़बूरी में शिवरी से कहा गया . ऋषियों ने भगवान का आदेश शिवरी को सुनाया . उसने सरोवर में स्नान किया तो सरोवर निर्मल हो गया .

भगवान के घर में जाति -भेद नहीं हैं कि कोई छोटी जाति का है या बड़ी जाति का है . कौन शूद्र है , कौन ब्राह्मण है ? जिसके हृदय में भगवान विराजमान है वही ब्राह्मण है . चाहें वह ब्राह्मण के घर पैदा हुआ हो , पर यदि वह कर्मो से शूद्र है , तो वह शूद्र हैं . कर्मो की प्रधानता है . आध्यात्म के मार्ग में व्यवहार की , विचारों की , साधना की प्रधानता है .

****

आत्म -स्थित होने पर ही अपना - पराया जाता है .

संसार दुःखी है . इसका कारण क्या है ? प्रत्येक मनुष्य के भीतर में 'मेरा -तेरा -पन ' बस गया है . द्वेत है , अज्ञान है . हर व्यक्ति जानता है कि परमपिता परमात्मा सबके भीतर में विराजमान है . परन्तु इसके बाबज़ूद भी हम सब लोग दुःखी हैं . ज्ञानी दुःख का कारण अज्ञान मानते हैं . अज्ञान के कारण ही अहँकार की उत्पत्ति होतीं है , द्वेत -भाव उत्पन्न होता है एवं अपने -पराये का बोध होता है . जब तक मन में यह रहता है कि मैं कुछ और हूँ , दूसरा व्यक्ति कुछ और है , वो मुझसे छोटा या बड़ा है , या उसने कभी मेरे साथ शत्रुता या मित्रता का व्यबहार किया - तब तक इन्हीं द्वन्दों में हमारा मन चौबीसों घंटे चक्कर लगाता रहता है . गुरुदेव फरमा रहे हैं कि यदि कभी सच्चे सिद्ध पुरुष का योग हो जाय , उनसे मिलन हो जाय :-

"बिसर गई सब तात पराई , जब से साध संगत मोहे पाई.."

अर्थात जब से मैंने सच्चे महापुरुष की संगति का लाभ उठाया है , मैं सत्संग में सम्मिलित हुआ हूँ , तबसे मेरे मन से " मेरे - तेरे -पन " का भाव हमेशा के लिए चला गया है .

वो कैसा सत्संग है ? वो कैसे सिद्ध पुरुष हैं ? हम और आप भी सत्संग में आते हैं . हमारी और आपकी स्थिति ऐसी क्यों नहीं होतीं ? " साध संगत मोहे पाई " का अर्थ है कि मेरी आत्मा और उस सिद्ध पुरुष की आत्मा एक हो जाये . साधना करते -करते , अपने इष्टदेव के चरणों में रहते -रहते एक दिन हमारी आसक्ति शरीर , मन , बुद्धि एवं अन्य बातों के साथ ख़त्म होकर हमारी आत्मा विकसित हो उठे और उस महापुरुष के चरणों में या उसकी आत्मा में लय हो जाये . इस तरह के सत्संग से जब हम अन्दर से प्रकाशित हो जाते हैं तो 'मेरा -तेरा -पन ' ख़त्म हो जाता है . हम भले ही भक्ति करते हैं ,परन्तु हमारी आत्मा तक रसाई नहीं हुई है , आत्म -स्थिति नहीं हुई है . कभी -कभी झलक भले ही मिल जाती होगी परन्तु यह स्थिति निरन्तर रहनी चाहिये . यह ही प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य होना चाहिये . जब तक भीतर में ' मेरा -तेरा -पन ' है , व्यक्ति कभी भी सच्चे सुःख की प्राप्ति नहीं कर सकता , आत्मा का आनन्द तो बहुत दूर है .

अभ्यास करते - करते जब ईश्वर की , महापुरुषों की कृपा होती है तब इस स्थिति पर पहुँच होती है . यह ऊँचे संतों की अवस्था है . यह साधारण व्यक्ति की अवस्था नहीं है कि वह कह दे " न कोई बैरी नहीं बेगाना , सकल संग हमको बन आई ". जब आत्मा की अनुभूति हुई , आत्मा में स्थिरता आ गई तब कोई दुश्मन या पराया दीखता ही नहीं , अपना ही रूप या ईश्वर का रूप दीखता है . यह साधना की ऊंची मन्ज़िल है . दूसरा चरण यह है कि जब तक व्यक्ति का सहज स्वभाव यह नहीं बन जाता कि " जेहि विधि राखे राम , तेहि विधि रहिये ." तब तक व्यक्ति कितनी ही भक्ति कर ले , उसको आत्मा का सुःख नहीं मिलता . दुःख आता है तब भी वह सुखी है , और सुःख आता है तब भी उसमें वह लिप्त नहीं होता . वह तो आत्मिक सुःख का आनन्द ले रहा है . प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर की गति में अपनी

गति नहीं मिला पाता . यह बड़े ऊँचे फ़क़ीरों की स्थिति है . यह बड़े ऊँचे सन्तों की आन्तरिक वृत्ति है . गुरु नानक देव जी ने कहा है कि जितनी पद्धतियाँ हैं, सब ठीक हैं . परन्तु साधक सफल तभी होगा जब वह इस स्थिति पर पहुँच जायेगा कि वह यह समझे कि जो प्रभु कर रहे हैं , हमारे हित में है . उसी में साधक सन्तुष्ट और प्रसन्नचित्त रहता है . यह भी सत्य है कि हम कितनी भी साधना कर लें , सुबह से शाम तक पूजा पर बैठें , परन्तु ज़रा सी मुसीबत आ जाने पर यदि हम घबरा जाते हैं तो हमारी साधना का क्या लाभ ? वो तो मन की साधना हुई जो परिवर्तनशील है , प्रति क्षण परिवर्तित होती रहती है .

तीसरा चरण है कि भगवान जो करते हैं उनकी लीला में अपने आप को सम्मिलित करके साधक सन्तुष्ट रहता है . चौथा यह है कि साधक की दृष्टि में सिवाय भगवान के अन्य कोई रहता ही नहीं . उसको इतनी अनुभूति हो जाती हैं कि वह कण -कण में भगवान के दर्शन करता है . भूकम्प आते हैं तो उसमें भी वह भगवान की लीला देखता है , बनस्पति फूलती है , हंसती है तो उसमें भी वह भगवान की लीला देखता है . सुःख में भी खुश , दुःख में भी खुश. भगवान की ही लीला सब में देख रहा है और सब में ही भगवान का रूप देख रहा है . " पेख - पेख नानक बिगसाई ." वो भगवान की कला को देखकर विसमाद में चला जाता है और उस विसमाद के , आत्मा के आनन्द में डूब जाता है .

ये साधारण सत्संगियों की बातें नहीं हैं , ये ऊँचे सत्संगियों की बात है . यदि किसी सिद्ध पुरुष की कृपा हो गई है और आपने स्वयँ भी साधना की है , मेहनत की है , तब यह स्थिति पैदा होती है . हम लोग मान तो लेते हैं परन्तु इसकी गहराई में जाना है . इन शब्दों की जो गँगा बह रही है , परमात्मा का रूप दीख रहा है , उसकी अनुभूति करनी चाहिये . विचार करना चाहिये कि इन तीन -चार बातों में से हम एक में भी तो सफल नहीं हैं .

सत्संग का मतलब यह है परमपिता परमात्मा की कृपा से यदि कोई सच्चा गुरु मिल जाय तो उसकी संगत का लाभ उठा कर हम भी वैसे ही बन जायें . सन्त का शरीर पूजनीय नहीं है . उसका आदर और सम्मान तो करना चाहिये , परन्तु उसके भीतर में जो गुणों का भंडार है , हमें उसकी प्रसादी लेनी है , और हमें वैसा ही बनना है . इतनी ऊंची बातें सुनकर किसी को निराश नहीं होना चाहिये . पूज्य गुरु महाराज (महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) कहते हैं कि यदि औरों को सफलता मिली है तो हमको भी अवश्य मिलेगी . महापुरुषों की बातों को सन्मुख रखना चाहिये . निराश नहीं होना चाहिये . मेहनत करनी चाहिये . जो वीर प्रकृति के होते हैं उन पर प्रभु प्रसन्न होते हैं और अवश्य कृपा करते हैं . मेरी गुरुदेव के चरणों में प्रार्थना है कि वह आप सब भाईयों को शक्ति दें कि आप और आगे बढ़ें और पूज्य गुरुदेव के पवित्र नाम को चारों और फैला दें . किसी विशेष प्रकार के ढ़ंग को नहीं अपनाना है . गुरु महाराज के आदेशानुसार चरित्र का निर्माण करें . सिर्फ चरित्र निर्माण से ही उनके नाम को फैलाना है .

गुरुदेव आपको शक्ति दें .